Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकाश

विश्वेदेवाः

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
67983

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आर्ष साहित्य
Complete Vedic Books Store
Yog, Vedic, Ayurvedic, Relegious
All Yog & Organic Products
(M) 9541317278, 8869821468
Web.: aarshsahitya.com

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शाश्वत संस्कृति परिषद् की भेंट

विश्वे देवाः

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शाश्वत संस्कृति परिषद् का उद्देश्य

विशुद्ध भारतीय तत्त्वदर्शन पर सम्यक् गवेषणा करना तथा उसका प्रचार करना एवं उसके आधार पर राष्ट्र के सम्मुख उपस्थित सभी समस्याओं पर सुलझाव प्रस्तुत करना।

परिषद् के अन्य प्रकाशन

१. धर्म संस्कृति और राज्य
२. धर्म तथा समाजवाद
३. श्रीमद्भगवद्गीता एक अध्ययन
४. ब्रह्मसूत्र सरल सुबोध भाषा-भाष्य
५. इतिहास में भारतीय परम्पराएँ
६, प्रजातन्त्र तथा वर्णाश्रम व्यवस्था
७. भारत में राष्ट्र
८. समाजवाद एक विवेचन
९. गांधी और स्वराज्य
१०. भारतीयकरण एक अध्ययन
११. भारत गांधी नेहरू की छाया में
१२. भारतीय राजनीति विभिन्न कालों में
१३. विज्ञान और विज्ञान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विश्वे देवाः

गुरुदत्त
एम० एस-सी०

081
167983

Central Library
167983
Gurukula Kangri (Deemed to be University) Haridwar

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

R
089.9143
GUR-V

9213527666
हिन्दी साहित्य सदन
2, बी.डी. चैम्बर्स, 10/54, देशबन्धु गुप्ता रोड
करोल बाग, नई दिल्ली-1100 5

मूल्य : ५० रुपये

प्रकाशक : हिन्दी साहित्य सदन
३०-पी, कनॉट सरकस, नई दिल्ली-११०००१

संस्करण : १९९६

मुद्रक : बालाजी ऑफसेट
शाहदरा, दिल्ली-११००३२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकाशकीय निवेदन

वेद विद्या रूपी अपार एवं अथाह रत्नाकर का एक रत्न "विश्वे देवाः" प्रस्तुत करते हुए हमें अतीव प्रसन्नता हो रही है।

"विश्वे देवाः" ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के १६४वें सूक्त की व्याख्या है। इस सूक्त के देवता का नाम भी विश्वे देवाः ही है।

"विश्वे देवाः" में सृष्टि की उत्पत्ति की विशद् व्याख्या विहित है और इस व्याख्या को प्रस्तुत ग्रन्थ के रूप में विरचित करने का श्रेय हमारे सुपरिचित विद्वान् एवं मनीषी श्री गुरुदत्त जी को है।

यह श्री गुरुदत्त जी के अनवरत अध्यवसाय का ही परिणाम है कि वेद एवं वेदान्त विषयक अनेक ग्रन्थ परिषद् को प्रकाशित करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है।

यह कार्य कितना श्रमसाध्य है, इसका अनुमान हमारे पाठक उनकी कृतियों का पारायण कर सहज ही लगा सकते हैं।

वेद-व्याख्या विकट कार्य होने पर भी जिस सरल भाषा में यह भाव-पूर्ण रचना प्रस्तुत की गई है, इसके लिए हम श्री गुरुदत्त जी के प्रति कृतज्ञ हैं।

अन्त में हम इतना ही कहेंगे कि इस ग्रन्थ में जो कुछ अच्छा है, वह सब लेखक का है और जो कुछ त्रुटिपूर्ण है—प्रूफ संशोधन अथवा साज-सज्जा आदि—उसके दोषी हम हैं, जिसके लिए हम अपने सुविज्ञ पाठकों से विनयावनत हो क्षमा याचना करते हैं।

शाश्वत संस्कृति परिषद्,
नई दिल्ली

अशोक कौशिक
मंत्री

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनुक्रम

प्राक्कथन	९-१०
भूमिका	११-२०
प्रथम परिच्छेद	
ऋग्वेद १०-१२९,१३	२१-४४
द्वितीय परिच्छेद	
ऋग्वेद १-१६४—१ से १९	४५-७६
तृतीय परिच्छेद	
ऋग्वेद १-१६४—२० से ५२	७७-१२२
उपसंहार	१२३-१३४
शुद्धि पत्र	१३५
विषयानुक्रमणिका	१३७-१४४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राक्कथन

'विश्वे देवाः' पुस्तक लिखने का विचार 'विज्ञान और विज्ञान' लिखते समय उत्पन्न हुआ था। उस पुस्तक को लिखते हुए ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के एक सौ चौसठवें सूक्त के कुछ मंत्र पढ़ने को मिले थे। उनको पढ़कर ऐसा प्रतीत हुआ कि यह सूक्त विज्ञान का एक महत्त्वपूर्ण अध्याय है। अतः इसका अनुवाद और इसका भाष्य पाठकों के सम्मुख रखने का मैंने निश्चय कर लिया। इस पुस्तक को पाठकों की सेवा में प्रस्तुत करते हुए मुझे प्रसन्नता है कि मैंने अपनी योग्यतानुसार इस विषय को स्पष्ट करने का प्रयास किया है।

यह प्रयास सफल हुआ है अथवा असफल, इसका निर्णय अन्य विद्वानों के लिये छोड़, यहाँ इस पुस्तक के लिखने में और प्रकाशित करवाने में जिन-जिन महानुभावों की सहायता मिली है, उनका धन्यवाद करना अपना कर्त्तव्य मानता हूँ।

सबसे पहले महर्षि स्वामी दयानन्द जी 'सरस्वती' के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करना चाहता हूँ। उन्होंने ही वेदों के सम्बन्ध में एक नवीन दिशा प्रदान की है जिससे यह सम्भव हो सका है कि वेद को ज्ञान-विज्ञान का ग्रन्थ समझ सका हूँ। ज्ञान-विज्ञान में ही आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक भाव समाहित हैं। इस कारण वेद का नवीन स्वरूप मस्तिष्क में बना तो वर्तमान पुस्तक लिखी जानी सम्भव हो सकी।

कुछ सहायता वेद के सायण भाष्य और श्री पण्डित जयदेव विद्यालंकार के हिन्दी भाष्य से भी प्राप्त हुई है।

इस पुस्तक के लिखने में श्री पण्डित दीनानाथ सिद्धान्तालंकार ने भी बहुत सहयोग दिया है। इसके लिये मैं उनका आभारी हूँ।

पुस्तक के प्रकाशन में शाश्वत संस्कृति परिषद् और मैसर्स गोविन्दराम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हासानन्द ने भी सहयोग दिया है। मैं उनका भी धन्यवाद करता हूँ।

यदि यह पुस्तक किसी विद्वान के हाथ में पहुँचे और वह इसमें किसी प्रकार की त्रुटि अथवा अभाव देखे तो आशा है वह मुझे सूचित करने का कष्ट करेंगे जिससे मैं उस त्रुटि अथवा अभाव को दूर कर सकूँ।

— गुरुदत्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भूमिका

विश्व के देवता से अभिप्राय विश्व में उपस्थित दिव्य शक्तियाँ हैं। विश्व का अर्थ यहाँ समस्त है। समस्त पृथिवी की ही नहीं, जगत् की ही नहीं, प्रत्युत पूर्ण व्योम में उपस्थित दिव्य शक्तियों से यहाँ अभिप्राय है।

व्योम का शाब्दिक अर्थ है अवकाश अर्थात् पूर्ण स्थान (space)। अतः इस पूर्ण स्थान के देवताओं से अभिप्राय हुआ विश्वे देवाः।

वेद में इनका वर्णन है। कई सूक्तों के देवता विश्वे देवाः हैं। अर्थात् वेद के उन सूक्तों में इन देवताओं का वर्णन है।

वे देवता कौन-कौन से हैं और वे कहाँ से आये ? विश्व में वे क्या कर रहे हैं और कब तक करते रहेंगे ? यही इन सूक्तों का विषय है।

ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के १६४ वें सूक्त का देवता मुख्य रूप से विश्वे देवाः है। कुछ एक मन्त्रों के अन्य देवता हैं परन्तु वे भी विश्वे देवाः के अन्तर्गत ही आ जाते हैं।

यहाँ, संक्षेप में, मन्त्र के देवता का अभिप्राय बता देना भी ठीक रहेगा। वेदों के प्रत्येक मन्त्र का देवता नियत है और देवता के विषय में शौनक ऋषि-कृत 'बृहद्देवता' में इस प्रकार लिखा है :

मन्त्रदृग्भ्यो नमस्कृत्वा समाम्नायानुपूर्वशः।
सूक्तर्गर्धर्चपादानाम् ऋग्भ्यो वक्ष्यामि दैवतम्॥
वेदितव्यं दैवतं हि मन्त्रे मन्त्रे प्रयत्नतः।
दैवतज्ञो हि मन्त्राणां तदर्थमवगच्छति॥
तद्विवतांस्तदभिप्रायान् ऋषीणां मन्त्रदृष्टिषु।
विज्ञापयति विज्ञानं कर्माणि विविधानि च॥

(बृहद्देवता १-१,२,३)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थात्—'मन्त्र द्रष्टा ऋषियों को नमस्कार कर पहले सब सूक्तों, मन्त्रों, पदों और ऋचाओं के देवताओं के विषय में लिखते हैं। (१)

प्रत्येक मन्त्र के देवता का ठीक-ठीक ज्ञान होना चाहिये। कारण यह कि जो व्यक्ति मन्त्र के देवता को जानता है, वह ही मन्त्र का अर्थ समझता है। (२)

वह ही मन्त्र के प्रयोजन के विषय में सम्मति (अधिकार युक्त) दे सकता है कि मन्त्र का द्रष्टा ऋषि मंत्र को क्या समझता है। (३)

अभिप्राय यह है कि मन्त्रार्थ समझने और मन्त्र के प्रयोजन को समझने के लिये मन्त्र के देवता को जानना अत्यावश्यक है।

मन्त्रों में वर्णित देवता मन्त्र के देवता से भिन्न है। मन्त्र का देवता जैसे कि शौनक ऋषि का कथन है, मन्त्र का अर्थ और मन्त्र का प्रयोजन प्रकट करने के लिये है। दूसरे शब्दों में मन्त्र का विषय ही मन्त्र का देवता होता है।

विश्वे देवाः शब्द में देवता का अर्थ दिव्य शक्तियों से है। अतः जिस सूक्त अथवा सूक्तांश का विषय विश्व की दिव्य शक्तियां होगा, उसके ऊपर विश्वे देवाः लिखा हुआ मिलेगा।

विश्वे देवाः मन्त्र-देवता के रूप में वेदों में कई स्थानों पर आया है। ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के तीसरे सूक्त के मन्त्र ७, ८ और ९ का देवता भी विश्वे देवाः है। इसी प्रकार प्रथम मण्डल के सूक्त १४ का भी देवता विश्वे देवाः है।

अन्य कई स्थानों पर मन्त्र देवता के रूप में विश्वे देवाः आया है। यह स्वाभाविक भी है; क्योंकि विश्व बहुत बड़ा है। अनन्त है। इसमें अनेक प्रकार की शक्तियाँ कार्य कर रही हैं और अनेक स्थलों पर इस शीर्षक के अन्तर्गत मन्त्र होने ही चाहियें।

पुस्तक के आकार, मूल्य और फिर अपने ज्ञान की सीमा का विचार कर हम केवल प्रथम मण्डल के १६४वें सूक्त की ही यहाँ व्याख्या लिखने का विचार रखते हैं।

हाँ, उस सूक्त को भली-भाँति समझने के लिये हमारे विचार में दो अन्य सूक्तों की व्याख्या भी समझ लेनी लाभकारी होगी। ये सूक्त हैं ऋग्वेद दसवें मण्डल के १२९ और १३०वें सूक्त। इन सूक्तों में वर्तमान जगत् जिसमें हम बसे हुए हैं, की रचना से पूर्व की स्थिति का वर्णन मिलता है। क्योंकि सूक्त १-१६४ में इसी जगत् के देवताओं का वर्णन है, इस कारण हमने इन सूक्तों की व्याख्या कर देनी भी उचित समझी है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आज का विज्ञान इसी जगत् के पदार्थों के विषय में अन्वेषण में लगा हुआ है। इस कारण इस जगत् सम्बन्धी सूक्त की व्याख्या के लिये हमने इन सूक्तों का चयन किया है।

यहाँ एक-दो शब्द 'इस जगत्' के विषय में लिख देना ठीक रहेगा। इस जगत् से हमारा अभिप्राय जानने के लिये एक-दो शब्द विश्व के विषय में भी लिख देने उचित होंगे।

एक खुला स्थान है, जिसकी सीमायें नहीं हैं। उसकी लम्बाई, चौड़ाई, ऊंचाई, गहराई अनन्त है। कम से कम हम यह कह सकते हैं कि हम (मनुष्य) उसकी कल्पना भी नहीं कर सकते। इसे व्योम, अनन्त स्थान ही कहा जा सकता है।

इस अनन्त स्थान के एक बहुत ही छोटे से अंश में हमारा जगत् रचा गया है। क्योंकि हम विश्व का परिमाण नहीं जानते, इस कारण यह नहीं बता सकते कि उसके अनुपात में हमारा जगत् कितना बड़ा है ? इतना ही कहा जा सकता है कि यह विश्व की तुलना में बहुत ही छोटा है। बहुत ही छोटा।

हाँ, इस जगत् के अनुपात में हम अपनी स्थिति की कल्पना कर सकते हैं। यह जगत् जिसमें हमारा सौर-मण्डल, पृथिवी, पृथिवी पर भारत देश और भारत देश में दिल्ली नगर, दिल्ली नगर में अपना मकान और उसमें हम स्वयं हैं। यह तो सब दृश्यमान् है अर्थात् दिखायी देता है। अतः इससे हम अपनी तुलना कर सकते हैं।

तुलना करने के लिये अन्तर (distance) का एक नाप नियत करना पड़ता है। यह नाप हम मीलों में अथवा किलोमीटर्ज़ में वर्णन करते हैं। एक निश्चित लम्बाई को हमने गज़ अथवा मीटर नियत किया है। उससे ही हम इस जगत् की लम्बाई, चौड़ाई का अनुमान लगा सकते हैं।

अपनी स्थिति और दृश्यमान जगत् के विषय में हम कुछ आंकड़े दे दें तो जो कुछ हम इस पुस्तक में लिखने जा रहे हैं, उसका कुछ अनुमान पाठक लगा सकेंगे।

१७६० गज़ का एक मील होता है और २५,००० मील से कुछ अधिक पृथिवी की परिधि (circumference) है।

यह पृथिवी गोलाकार ध्रुवों की ओर से कुछ दबी हुई और घेरे में कुछ उभरी हुई है। यह सूर्य के चारों ओर चक्कर काट रही है। सूर्य हमारी पृथिवी से १,३०,००,००० मील दूर है। सूर्य के चारों ओर केवल पृथिवी ही नहीं घूम रही। इसके चक्कर काटने वाले नौ तो बड़े-बड़े ग्रह (planets) हैं और कई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हज़ार छोटे-छोटे ग्रह हैं, जिनको अंग्रेजी में ऐस्टिरिऑड्स (asteriods) कहते हैं।

सूर्य का यह परिवार इतना बड़ा है कि उसमें पृथिवी तो एक सागर में एक बिन्दु मात्र भी नहीं। सूर्य परिवार में पृथिवी से बड़े-बड़े ग्रह भी हैं। सबसे बड़ा ग्रह बृहस्पति (jupiter) है जो पृथिवी से १,३०० गुणा बड़ा है और बृहस्पति सूर्य की तुलना में एक रेणु के समान है।

सूर्य का दूर से दूर ग्रह प्लैटो (Plato) है। यह सूर्य से ३,६६,६०,००,००० मील की दूरी पर है। इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि सौर-मण्डल कितना बड़ा है।

यह सौर-मण्डल एक अन्य बड़े परिवार का एक बहुत ही छोटा सा अंश है। इस बड़े परिवार को आकाश-गंगा (galaxy) कहते हैं। यह करोड़ों नक्षत्रों का समूह है। इस नक्षत्र समूह में सहस्रों सूर्य के समान दीप्तिमान नक्षत्र हैं। प्रत्येक का अपना-अपना मण्डल है। जैसे सूर्य का मण्डल है। ये मण्डल भी उस आकाश गंगा के अंग मात्र हैं।

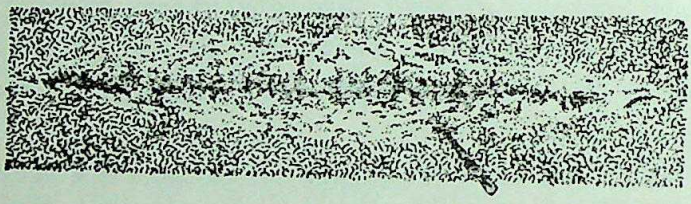

आकाश गंगा—हमारा सौर-मण्डल यहीं कहीं है।

आकाश गंगा के सब नक्षत्र एक केन्द्र के चारों ओर घूम रहे हैं। एक विशाल चक्र सा बना दिखायी देता है।

आकाश गंगा से परे भी कई इसी प्रकार के नक्षत्र समूह हैं। कई स्थानों पर अभी नक्षत्र-समूह बन रहे दिखायी देते हैं। इन नक्षत्र समूहों को भी 'गैलक्सीज़' कहते हैं और जहां अभी नक्षत्र समूह बन रहे हैं, उनको हिरण्यगर्भ (nebula) कहते हैं।

जहां तक नक्षत्र देखे गये हैं, वे पृथिवी से इतनी दूर हैं कि उनके पृथिवी से अन्तर को मीलों में तो लिखा ही नहीं जा सकता। इस कारण मील की भांति एक अन्य बड़ा पैमाना नियत किया गया है। यह प्रकाश वर्ष है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकाश १,८६,३०० मील प्रति सकिण्ड चलता है। जितना अन्तर प्रकाश एक वर्ष में चलेगा, उसे प्रकाश वर्ष के नाम से कहा गया है। यह होता है १,८६,३०० × ६० × ६० × २४ × ३६५ = ५८,७५,१५,६८,००,००० (५८ खरब, ७५ अरब, १५ करोड़, ६८ लाख मील)। यह एक प्रकाश वर्ष है और दूर से दूर तारा जो देखा गया है, वह ६,००,००,००,००० (छः अरब) प्रकाश वष के अन्तर पर है।

इस दृश्यमान् जगत् से व्योम बहुत, बहुत बड़ा है। यह अनन्त है। इस व्योम में जो कुछ है उसे विश्व कहा है। इसमें दिव्य गुणा युक्त पदार्थों को विश्वे देवाः का नाम दिया है।

इन विश्वे देवाः में से कुछ एक का वर्णन ही वेद के एक अंश में से हम यहाँ दे रहे हैं।

वेद के विषय में

प्राचीन भारतीय परम्परा के अनुसार वेद परमात्मा की वाणी हैं। परमात्मा ने पृथिवी पर प्राणी की रचना की। पहले यहाँ वनस्पतियाँ हुईं और पीछे प्राणी। प्राणियों में सबसे अन्त में मनुष्य हुआ।

आरम्भ में मनुष्य और अन्य प्राणी अमैथुनीय सृष्टि से हुए थे। अर्थात् वे माता-पिता के संयोग का परिणाम नहीं थे। आदि माता-पिता पृथिवी और और सूर्य माने गये हैं। इन दोनों के संसर्ग से प्राणी उत्पन्न हुए। प्राणियों में मनुष्य भी उत्पन्न हुए।

ये कैसे उत्पन्न हुए ? मान्यता यह है कि मनुष्य (युवा पुरुष-स्त्री) उत्पन्न हुए।[1]

तब ये बिना निवास भवन और बिना वस्त्रों के थे। ये दोनों वस्तुएं पीछे मनुष्य ने स्वयं बनायीं। साथ ही भोजन के लिये प्रथम मनुष्य ने पके फल, कन्दमूल ही प्रयोग किये। माँस खाने की विवशता और बुद्धि पीछे ही आविष्कार की गयी प्रतीत होती है।

पशु और इतर जन्तुओं की प्रथम पीढ़ी भी अमैथुनीय ही थी। इस पर भी मनुष्य और इतर प्राणियों में एक प्रकार का अन्तर था जिस कारण मनुष्य तो उन्नति करता हुआ अपने सुख-सुविधाओं के लिये सफल यत्न कर सका है और

---

१. इस विषय का विशद् वर्णन श्री गुरुदत्त की रचना 'विज्ञान और विज्ञान' में किया गया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इतर जीव-जन्तु तो जैसे सृष्टि के आदि में उत्पन्न हुए, वैसे ही आज भी हैं।

मनुष्य और इतर जीव-जन्तुओं में अन्तर मन और बुद्धि का है। परन्तु मन और बुद्धि का अन्तर होने पर भी यदि मन और बुद्धि के प्रयोग का ढंग न बताया जाये तो ये मन और बुद्धि भी किसी प्रकार का काम नहीं कर सकते।

ऐसा देखा गया है कि किन्हीं कारणों से कुछ बालकों के मन और बुद्धि को विकास देने वाला कोई उनके सम्पर्क में नहीं आ सका। इससे उनके ये दोनों अंग अविकसित रह गये।[1] वे लगभग पशु ही बने रहे।

इसी कारण भारतीय विद्वान् यह मानते हैं कि आदि सृष्टि उत्पन्न होने के समय मनुष्यों के मन और बुद्धि को विकास देने वाला कोई था। उस समय माता-पिता नहीं थे। मनुष्यों की प्रथम पीढ़ी कैसे सामान्य ज्ञान प्राप्त कर सकी? अर्थात् कैसे उसका मन और बुद्धि कार्य करने का ढंग सीख सके? वेद में इसका वर्णन किया गया है—

यद्वाग्वदन्त्यविचेतनानि राष्ट्री देवानां निषसाद मन्द्रा।
चतस्र ऊर्जं दुदुहे पयांसि क्व स्विदस्याः परमं जगाम॥
देवीं वाचमजनयन्त देवास्तां विश्वरूपाः पशवो वदन्ति।
सा नो मन्द्रेषमूर्जं दुहाना धेनुर्वागस्मानुप सुष्टुतैतु॥

(ऋ० ८-१००-१०, ११)

अर्थात्—जो वाणी तेजस्वी (प्रभायुक्त), अति सुखप्रद, निगूढ़ अर्थों को कहती है, देवताओं में विराजती है, वह चारों दिशाओं में ऊर्जा के रूप में बरसती है। इस वाणी का परम स्थान (स्रोत) कहां विद्यमान है?

यह दिव्य अर्थयुक्त वाणी प्रकट की जाती है देवताओं से। ऐसा सब प्रकार के ज्ञान द्रष्टा कहते हैं। यह सुखदायिनी अन्तरिक्ष की ऊर्जा गौ के समान दुही जाती है। वह वाणी उत्तम प्रकार से कही जाती हुई हमें प्राप्त हो।

इसका अभिप्राय यह है कि (वेद) वाणी का स्रोत परमात्मा है। वह अन्तरिक्ष के देवताओं को मिलती है और वे देवता इसका प्रसारण करते हैं। यह वाणी ऊर्जा की भाँति चारों ओर प्रसारित हो रही है।

इस दिव्य वाणी को, जो देवताओं ने प्रकट की और पुनः ज्ञान द्रष्टाओं से कही गयी है, यह अन्तरिक्ष की ऊर्जा समान वाणी सुख देनेवाली है। यह हमें (सब मनुष्यों को) प्राप्त हो। ऐसा वेद में कहा है।

दो बातें स्पष्ट रूप में कही गयी हैं। एक यह कि (वेद) वाणी परमात्मा

---

१. विशद् विवेचना पढ़ें 'विज्ञान और विज्ञान' पृ० १३५-१३६ पर।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ने अन्तरिक्ष के देवताओं को दी। अन्तरिक्ष के देवताओं ने उसे चारों ओर ऐसे बरसाया जैसे कि शक्ति (तरंगों में) फैलती है।

दूसरी बात यह बतायी गयी है कि देवताओं की इस दिव्य वाणी को दोहराया ज्ञान द्रष्टाओं ने। यह वेद है जो अत्यन्त सुख कल्याण का देने-वाला है।

ऐसा ही शतपथ ब्राह्मण में भी कहा गया है। वहाँ लिखा है—

सोऽयं पुरुषः प्रजापतिरकामयत। भूयान्त्स्यां प्रजायेयेति सोऽश्राम्यत्स तपोऽतप्यत स श्रान्तस्तेपानो ब्रह्मैव प्रथममसृजत त्रयीमेव विद्यां सैवास्मै प्रतिष्ठाऽभवत्तस्मादाहुर्ब्रह्मास्य सर्वस्य प्रतिष्ठेति तस्मादनूच्य प्रतितिष्ठति प्रतिष्ठा ह्येषा यद्ब्रह्म तस्यां प्रतिष्ठायां प्रतिष्ठितोऽतप्यत॥

(श० ब्रा० ६-१-१-८)

अर्थात्—इस प्रजापति पुरुष ने चाहा—मैं बहुत हो जाऊँ, मैं प्रजा को उत्पन्न करूँ। उसने श्रम किया, उसने तप-तपा। उसने श्रान्त और तप्त होकर ब्रह्म को अर्थात् त्रयी विद्या को उत्पन्न किया। यही उसकी प्रतिष्ठा (आधार) हुई। इसीलिये कहते हैं कि यह (त्रयी विद्या) प्रतिष्ठा है। इसी पर प्रतिष्ठित होकर (इसको आधार बनाकर) उसने तप किया।

इस कथन में प्रजापति से अभिप्राय हिरण्यगर्भ का है। हिरण्यगर्भ का ही वर्णन किया जा रहा है। जब हिरण्यगर्भ बन गया तो उनमें प्रजाओं में विभक्त होने की कामना (इच्छा) हुई। अर्थात् प्रकृति का वह रूप जो हिरण्यगर्भ में उपस्थित था, वह ऐसी स्थिति में पहुँच गया कि जगत् के भिन्न-भिन्न पदार्थ बनने की तैयारी होने लगी।

श्रम (प्रयत्न) हुआ और तप (निरन्तर यत्न) तपा गया (किया गया)। ऐसा करने पर त्रयी विद्या उत्पन्न हुई। वह त्रयी विद्या आधार बनी सृष्टि रचना की।

त्रयी विद्या वेद का दूसरा नाम है। इसे ब्रह्म के नाम से भी कहा गया है।

कुछ लोग मत प्रकट करते हैं कि देवता अग्नि, वायु, आदित्य तो जड़ हैं। वह किस प्रकार वेद का ज्ञान प्रसारित करते होंगे। इसी कारण कुछ लोग अग्नि, वायु, आदित्य को मनुष्य मानते हैं। वे मनुष्य हो सकते हैं, परन्तु इससे उक्त बात का विरोध नहीं। यहाँ वेद मन्त्र (ऋ० ८-१००-११) में कहा है—'पशवो वदन्ति' अर्थात् ज्ञान द्रष्टा कहते हैं। तो ये ज्ञान द्रष्टा वे मनुष्य होंगे, जिनके विषय में स्वामी दयानन्द ने लिखा है। परन्तु अग्नि, वायु और आदित्य मनुष्य हैं, इसका वेदोक्त प्रमाण मिल नहीं रहा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जहाँ तक देवताओं के न बोल सकने की बात कही जाती है, ऐसा समझना भूल है। कारण यह कि मनुष्य का शरीर, गला, होंठ, इत्यादि भी तो जड़ हैं। इस पर भी यह बोलता है। वास्तव में जड़ शरीर में बैठा जीवात्मा बोलता है। इसी प्रकार अग्नि, वायु इत्यादि में बैठा हुआ परमात्मा बोलता है और वेद मन्त्र में कहा भी है—**"क्व स्विदस्या परमं जगाम।"**

हाँ, वह भाषा मनुष्य होंठों से कही जाने वाली नहीं हो सकती। वह तरंगें मात्र ही हो सकती हैं।

वेद ज्ञान देवताओं से तरंगों के रूप में आता है और ऋषियों के मन में इसका अविर्भाव होता है और तब ऋषि इनको जन सामान्य को देते हैं। इसका वर्णन वेद में अन्यत्र भी किया गया है। एक मन्त्र है :

बृहस्पते प्रथमं वाचो अग्रं यत् प्रैरत नामेधेयं दधानाः।
यदेषां श्रेष्ठं यदरिप्रमासीत् प्रेणा तदेषां निहितं गुहाविः।।

(ऋ० १०-७१-१)

अर्थात् – ज्ञानस्वरूप परमात्मा से पहले वेद वाणी के श्रेष्ठ पद समूह को प्राप्त कर ऋषि मुनि प्रचार करते हैं। जो इनमें श्रेष्ठ होते हैं उनके गुहा (मस्तिष्क) में इस (ज्ञान) का आविर्भाव होता है।

इस प्रकार यह ज्ञान परमात्मा द्वारा मनुष्य को मिला है।

यहाँ इतना और बता देना हम आवश्यक समझते हैं कि शब्दार्थ, हमने जहाँ तक सम्भव हुआ है, सर्वथा वैदिक ही दिये हैं। इसमें अन्य भाष्यकारों की सहायता ली है। इस पर भी वैदिक शब्दों के अर्थ यौगिक होने के कारण मन्त्रों के भावार्थ और व्याख्या में अन्य भाष्यकारों से एक से अधिक स्थानों पर भिन्नता हो गयी है। हमने शब्दार्थ तो अन्य भाष्यकारों से ही लिये हैं, परन्तु वे भाष्यकार स्वयं भी भावार्थ में एक दूसरे से भिन्न हो गये हैं और हम भी अपने किये मन्त्र के भावार्थ में किसी न किसी से भिन्न ही भावार्थ कर गये हैं। यह शब्दों के यौगिक अर्थ होने के कारण ही हुआ है।

अतः अपने किये गये अर्थ और भावार्थ में कारण बता देना आवश्यक हो गया है। हमने निम्न कारणों से ही शब्दों के अर्थ और भावार्थ का चयन किया है—

(१) हमने यत्न किया है कि मन्त्र के देवता (विषय) का ही मन्त्रार्थ में वर्णन हो। हमारा विचार है कि मन्त्र के विषय से अतिरिक्त चर्चा मन्त्र में से निकालनी उचित नहीं। मन्त्र के देवता के विषय से मतभेद के लिये स्थान नहीं होना चाहिये। यदि देवता अर्थात् मन्त्र के विषय पर मतभेद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रखने का अवसर दिया गया तो एक ऐसा मतभेद और विभ्रम उत्पन्न होने लगेगा कि हमें भय है कि वेद और उसके साथ मानव ज्ञान भी उसके नीचे दबकर विलुप्त हो जायगा।

वेद ज्ञान ईश्वरीय होने के कारण विलुप्त नहीं हो सकता। यह हम मानते हैं, परन्तु उसके उद्धार के लिये पुनः ऋषियों को इस भूतल पर आना पड़ेगा और तब तक के लिये मानव समाज को प्रतीक्षा करनी होगी।

इस कारण हमने मन्त्रों के देवता पर बल दिया है। अधिकाँश मन्त्र, जो हम इस पुस्तक में दे रहे हैं, उनका देवता 'विश्वे देवाः' है। 'विश्वे देवाः' का अर्थ हम भूमिका के आरम्भ में दे आये हैं। विश्वे देवाः विश्व के दिव्य पदार्थ हैं। अन्य मन्त्रों के देवताओं का अर्थ अपने-अपने मन्त्र के साथ ही देंगे और वहाँ ही उनकी व्याख्या करेंगे।

(२) जहाँ पर सूक्त का अथवा साथ-साथ में आये मन्त्रों का समान देवता है, वहाँ-वहाँ उन मन्त्रों में वर्णित विषय में एक क्रम होना आवश्यक हैं। एक मन्त्र दूसरे मन्त्र के साथ क्रमवार सम्बद्ध होना चाहिये। हमने अपने मन्त्रार्थों में इस बात का ध्यान रखने का यत्न किया है।

(३) प्रायः मन्त्रों में उपमा अंलकार का प्रयोग किया गया है। हम समझते हैं कि वहाँ पर विषय अन्य मन्त्रों से क्रम मिलाकर पता करना चाहिए और उपमा को एकांगी मानकर गौण मानना चाहिये।

(४) वेद जैसी ज्ञान की पुस्तक में विषय का विवेचन ऐसे ढंग से होना चाहिये कि वह सबके लिये सरल और सत्य सिद्ध हो।

इस स्थान पर हमें यह कहने में संकोच नहीं होता कि हमारे किये गये अर्थों से भिन्न अर्थ उस मन्त्र के हो सकते हैं। भावार्थ में भी भिन्नता हो सकती है. परन्तु विषय का विचार रखते हुए हम अपने अर्थ और भावार्थों को ही दे रहे हैं।

(५) यह कहा जाता है कि मन्त्रों के तीन प्रकार के अर्थ किये जा सकते हैं। आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक। ऐसा हो सकता है, परन्तु हम इस सूक्त का अर्थ करते हुए कुछ ऐसा अनुभव करते हैं कि इस सूक्त में तीनों प्रकार के अर्थ एक में ही समाहित हो गये हैं। जगत् और विश्व में तीनों प्रकार के पदार्थ विद्यमान हैं और जब उसमें उपस्थित दिव्य गुण युक्त पदार्थों का वर्णन होने लगेगा तो तीनों प्रकार के वर्णन उसमें आने आवश्यक हो जायेंगे। हम अपने अर्थों और भावार्थ में कुछ ऐसा ही अनुभव करते हैं।

हमारा अभिप्राय है कि किसी भी दृष्टि से अर्थ किये जायें, वे यही होने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चाहियें। इसमें तीनों दृष्टियाँ एक हो गयी हैं। विश्वे देवाः में आधिदैविक अर्थ तो हैं ही; साथ ही इस सूक्त में पृथिवी के पदार्थों और प्राणियों की उत्पत्ति इत्यादि का वर्णन भी है। वहाँ मन्त्रार्थ आधिभौतिक हो जाने स्वाभाविक ही हैं और इस जगत् में आत्मा-परमात्मा और मूल प्रकृति अक्षर होने से अर्थ आध्यात्मिक भी माने जायेंगे। परमात्मा सम्पूर्ण जगत् का स्रष्टा है। जीवात्मा भोक्ता है और प्रकृति उपादान कारण है। इस कारण इन अक्षर पदार्थों का वर्णन होने से यह अर्थ आध्यात्मिक भी हैं।

हमारे विचार किन्हीं विद्वानों को अस्वीकृत भी हो सकते हैं। यह भी सम्भव है कि वे ठीक हों। हम उनके युक्तियुक्त और सप्रमाण सुझावों के लिये आभारी रहेंगे।

—गुरुदत्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

R 089.9143
GUR-V

प्रथम परिच्छेद

: १ :

रात के समय जब हम आकाश की ओर देखते हैं तो असीम अँधकार में टिमटिमाते दीपकों की भाँति असंख्य तारागण दिखाई देते हैं। पहले तो यह समझ लेना चहिए कि दिन के समय भी अन्तरिक्ष में वही कुछ होता है जो हमें रात के समय दिखायी देता है। इस पर भी दिन के समय आकाश अन्धकारपूर्ण दिखाई नहीं देता है और न ही उसमें तारों के दर्शन होते हैं। यह भिन्नता आकाश में अति प्रकाशमय सूर्य के सामने आ जाने के कारण होती है।

इसको समझने के लिये रात के समय सामने से आ रही ऐसी मोटरगाड़ी का विचार करें, जिसकी सामने की बत्तियाँ जल रही हों। उसकी ओर देखने से और उसके प्रकाश में गाड़ी के इधर-उधर देखने से उन बत्तियों के पीछे अथवा आस-पास मोटर की बत्तियों के प्रकाश के अतिरिक्त अन्य कुछ भी दिखाई नहीं देगा। यही कारण है कि दिन के समय सामने सूर्य होने के कारण उसके प्रकाश में उसके पीछे अथवा आस-पास प्रकाश के अतिरिक्त कुछ भी दिखाई नहीं देता। वास्तव में दिन के समय भी अन्तरिक्ष में तारागण उसी प्रकार होते हैं जैसे कि रात के समय होते हैं।

सामान्य-सी दूरबीन से भी यह पता चल सकता है कि तारागण वास्तव में नक्षत्र ही हैं। वे हमारी पृथिवी की भाँति ही अन्तरिक्ष में अपने-अपने मार्ग पर चल रहे हैं। पृथिवी के सामान कई गोले आकाश में घूम रहे हैं। पृथिवी तो उनमें एक बहुत ही छोटा-सा गोला है।

इसके अतिरिक्त हम कई उसी प्रकार के गोलों को टूटते और जलकर भस्म होते भी देखते हैं। हम उनको टूटकर विनष्ट होता देखते हैं तो इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि यह तारागणों का संसार नष्ट होने वाला है। पृथिवी पर जीव-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जन्तुओं की भाँति ये भी नाश को प्राप्त होने वाले हैं और यह न्याय का एक सिद्धान्त है कि जो नष्ट होता है वह कभी बना भी था। इससे हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि यह तारागणों से भरपूर जगत् कभी नहीं भी था। इसके बनने से पहले क्या था ? यह प्रश्न सम्मुख आ जाता है। प्रश्न है कि जगत् इस सृष्टि से पूर्व क्या था ?

इस प्रश्न का उत्तर उपनिषद् में दिया गया है। वहाँ एक स्थान पर एक जिज्ञासु के प्रश्न पर ऋषि इस प्रकार कहता है—

कुतस्तु खलु सोम्यैव ँ स्यादिति होवाच कथमसतः सज्जायेतेति।
सत्त्वेव सोम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयम् ॥ (छान्दो० ६-२-२)

अर्थात्—किन्तु हे सोम्य ! ऐसा कैसे हो सकता है ? भला असत् से सत् की उत्पत्ति कैसे हो सकती है ? अतः हे सोम्य ! आरम्भ में यहाँ एक सत् था और वह अद्वितीय ही था।

अभिप्राय यह है कि एक अद्वितीय पदार्थ पहले था और उससे ही यह सब दृश्यमान जगत् उत्पन्न हुआ है। 'यह सब कुछ' का अर्थ है जगत् में जो कुछ रूपवान और अरूपवान दिखायी देता है। सूर्य, चन्द्र, तारागण इत्यादि और पृथिवी पर नदी-नाले, पहाड़ अर्थात् सब कुछ जो हम देखते हैं, एक अद्वितीय पदार्थ से उत्पन्न हुआ है। उसे अद्वितीय इस कारण कहा गया है कि उसकी तुलना का कोई नहीं है। वह अपने में एक ही है।

इस रहस्य को प्रकट करने के लिए दो सूक्त ऋ० १०-१२९, १३० यहाँ उद्धृत कर रहे हैं। इन दोनों सूक्तों का देवता 'भाववृत्तम्' है। भाववृत्तम् का अर्थ है रचना का वृत्तान्त। यदि अंग्रेज़ी में लिखा जाये तो यह होगा 'Story of Creation' अर्थात् सृष्टि-रचना की कहानी।

उस एक को मूल प्रकृति कहते हैं। वेद में उस प्रकृति के स्वरूप का वर्णन किया गया है।

नासदासीन्नो सदासीत् तदानीं नासीद्रजो नो व्योमा परो यत्।
किमावरीवः कुह कस्य शर्मन्नम्भः किमासीद्गहनं गभीरम् ॥
(ऋ० १०-१२९-१)

मंत्र का पदार्थ

(न) नहीं। (असत्) रूप रहित। (आसीत्) था। (न) नहीं। (सत्) रूप वाला। (आसीत्) था। (तदानीम्) आदि में अर्थात् जगत् रचना से पूर्व। (न) नहीं। (आसीत्) था। (रजः) छोटे नक्षत्र। (नो व्योम) आकाश नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जब रूपवान जगत् नहीं था और जब अरूपवान जगत् भी नहीं था, जब विश्व नहीं था और न ही उससे परे व्योम (अन्तरिक्ष) में कुछ था, उस समय चारों ओर से घेरे हुए क्या था ? कहाँ था और किसके आश्रय पर था ? समुद्र की भांति गम्भीर और गहन अर्थात् अगाध क्या था ?

इस मन्त्र में तो प्रश्न के रूप में ही पूछा गया है कि ऊपर जो अवकाश दिखाई देता है, वह क्या है और सृष्टि रचना से पूर्व उसमें क्या था ? जब नक्षत्र इत्यादि नहीं थे तो तब यह जो समुद्र की भाँति रहा होगा, वह क्या था ?

उस समय के खाली स्थान (अवकाश) को एक गहन और गम्भीर समुद्र की भाँति लिखा है। यह इस कारण कि इस खाली स्थान की लम्बाई-चौड़ाई तथा गहराई की सीमा दिखायी नहीं देती।

इस मन्त्र में रजः शब्द आया है। इसका शाब्दिक अर्थ है कण। परन्तु अन्तरिक्ष के सन्दर्भ में क्षुद्र कण का अभिप्राय वे छोटे-छोटे नक्षत्र ही हो सकते हैं। जिन्हें अंग्रेजी में 'asteriods' कहा जाता है। इनका नाम अगले कई मन्त्रों में आया है। वहाँ इनका वर्णन पढ़ने से यही अर्थ बनता है।

न मृत्युरासीदमृतं न तर्हि न रात्र्या अह्न आसीत् प्रकेतः।
आनीदवातं स्वधया तदेकं तस्माद्धान्यन्न परः किं चनास॥

(ऋ० १०-१२९-२)

पूर्वोक्त मन्त्र में पूछे गये प्रश्नों के उत्तर में इस मन्त्र में कहा है कि उस समय अर्थात् सृष्टि-रचना से पूर्व न तो कोई जीवन था और न ही मृत्यु

था। (परोः यत्) जो उससे भी परे (था) (नहीं था)। (किम आ अवरीवाः) क्या घेरे हुए था। (कुह) कहाँ था। (कस्य शर्मन्) किसके आश्रय था। (अम्भ) समुद्र : (किम्) क्या। (आसीत्) था। (गहनं गम्भीरं) अथाह और अपार अगाध . (ऋ. १०-१२९-१)

मंत्र का पदार्थ—

(न) नहीं। (मृत्युः) मरना अर्थात् संहार। (अमृतं) जीवन। (आसीत्) था। (न) नहीं। (तर्हि) उस समय। (न) नहीं (था)। (रात्र्याः) रात्रि। (अह्नः) दिन (सूर्य-चन्द्र)। (आसीत्) था। (प्रकेतः) ज्ञान। (आनीत्) प्राण। (अवातम्) गति का अभाव। (स्वधया) प्रकृति से। (तत्) वह। (एकं) एक। (तस्मात्) इससे। (ह) निश्चय से। (अन्यत्) दूसरा कोई। (न) नहीं। (परा) सूक्ष्म। (किंचन्) कुछ भी। (च न) और नहीं। (आस) था। (ऋ. १०-१२९-२)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(संहार) थी। उस समय दिन और रात भी नहीं थे। कारण यह कि सूर्य और चन्द्र ही नहीं थे। अर्थात् उस समय सृष्टि और विसृष्टि नहीं थी। उस समय यहाँ कुछ भी जानने योग्य नहीं था। प्राण तो था, परन्तु स्थिति अवातम् अर्थात् अविचलता की थी। अभिप्राय यह कि प्राण कार्य रूप में नहीं था। जब ऊर्जा कार्य रूप में होती है तब वह प्राण कहलाती है।

आगे कहा है कि प्राण रहित स्थान था। प्राण परमात्मा की शक्ति है जो कार्य करती है। इस पर भी शक्ति तो थी। वह ऐसे रूप में थी जो कार्य नहीं कर रही थी। आज भी हम शक्ति को दो रूपों में देखते हैं। शक्ति अर्थात् ऊर्जा का एक रूप गर्भित अर्थात् पोटेंशियल (potential energy) कहलाता है और दूसरा रूप क्रियाशील ऊर्जा (kinetic energy) कहलाती है। इसको समझने के लिए एक उदाहरण लें। बन्दूक की गोली में किसी को मार डालने की शक्ति तो तब भी होती है जब यह चलायी नहीं गयी होती। उस समय इसकी शक्ति को गर्भित कहते हैं और जब गोली दाग दी जाती है तब यह वेग से भागती हुई जिसको लग जाती है, वह मारा जा सकता है। इस समय गोली में वह शक्ति आ जाती है कि वह पेड़ों को चीरकर निकल जाती है। इसे क्रियाशील ऊर्जा कहते हैं।

मन्त्र में कहा है कि उस समय एक स्वधा गुणवाला पदार्थ था। स्वधा का अर्थ है अपने आप स्थित रहने का गुण और जो ऐसा रह सके वह स्वधा कहलाती है। यह मूल प्रकृति का दूसरा नाम है। वह अनादि तत्त्व है। उसके कई प्रकार भी नहीं थे। वह एक ही था।

तम आसीत् तमसा गूलहमग्रेऽप्रकेतम् सलिलं सर्वमा इदम्।
तुच्छ्येनाभ्वपिहितं यदासीत् तपसस्तन्महिनाजायतैकम्॥

(ऋ० १०-१२९-३)

वर्तमान रचना से पूर्व अँधकार था और वह अँधकार अति गूढ़ था।

पदार्थ—

(तमः आसीत्) अँधकार था। (तमसा गूढ़म) अँधकार से व्याप्त था। (अग्रे) रचना से पूर्व में। (अप्रकेतम्) न जानने योग्य अर्थात् जो जाना नहीं जा सकता था। (सलिलं) वह जाने वाला। (सर्वम्-आ-इदम) इस सबमें व्यापक। (तुच्छयेन्) सूक्ष्म रूप से। (आभु अपिहितम्) चारों ओर से ढका हुआ। (यद्) जो। (आसीत्) था। (तपसः तत् महिना) उस महान् तप अर्थात् परिश्रम से। (अजायत् एकम्) एक प्रकट हुआ। (ऋ. १०-१२९-३)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसका अभिप्राय यह है कि वर्तमान काल में जो प्रकाश हम देखते हैं, वह उपस्थित नहीं था। प्रकाश स्वयं दिखायी नहीं देता। जब यह किसी वस्तु पर पड़ता है तो वह वस्तु आलोकित हो उठती है। उस समय न तो प्रकाश था और न ही कोई व्यक्त पदार्थ था जिसको प्रकाश आलोकित कर सके। अतः यह लिखा है कि यहाँ प्रकाश नहीं था और न ही कोई जानने योग्य पदार्थ था। इसका अभिप्राय यह है कि ऐसा पदार्थ जो जाना जा सके।

स्वधा को 'अप्रकेतम्' कहा गया है। अर्थात् न जानने योग्य। जाना इन्द्रियों द्वारा होता है और वह इन्द्रियों से न जाना जा सकने योग्य स्वधा अर्थात् प्रकृति थी जो सलिल भी कही गयी है। सलिल का अर्थ है जो बह जाने वाली हो। ऐसे पदार्थ को अंग्रेज़ी में 'फ्लुइड' (fluid) कहते हैं। इसका नाम तरल भी है।

तरल पदार्थ को समझने के लिये जल का उदाहरण लिया जा सकता है। जल में तरलता इस कारण कही जाती है कि यह अपना आयतन न बदलते हुए अपना रूप बदल सकता है। एक गिलास के जल को एक प्याले में डाला जा सकता है और यह गिलास के अपने रूप को बदल कर प्याले के रूप में आ जाता है। ऐसे पदार्थ को किसी भी रूप के बर्तन में डालकर कोई भी रूप दिया जा सकता है। इस पर भी इसका आयतन नहीं बदलता। यही गुण उस समय स्वधा अर्थात् प्रकृति में था।

किसी पदार्थ में तरलता तब आती है जब उसके टुकड़े-टुकड़े हों। जल के अणु होते हैं। इसी प्रकार प्रकृति भी परमाणु रूप है। असंख्य परमाणु समीप-समीप होने से पदार्थ में तरलता होती है।

जल के अणु बहुत बड़े-बड़े होते हैं और प्रकृति के परमाणु उसके अनुपात में बहुत छोटे-छोटे होते हैं। तथापि दोनों में तरलता एक समान होती है।

सायण सलिल के अर्थ इस प्रकार लिखता है—

सलिलम् षल गतौ। औणादिक इलच ..... यथा क्षीरेणाविभाग-यत्र नीरं द्रविज्ञानं तथा तमसादि भागापन्नं जगन्नशक्य विज्ञानमित्यर्थः ननु विविध रूप भूयसः .....

अर्थात्—षल धातु गति अर्थ में। इलच् प्रत्यय है। ...जिस प्रकार से दूध में मिला हुआ जल पृथक् दिखायी नहीं देता उसी प्रकार से अन्धकार से आच्छादित जगत् देखना सम्भव नहीं .....।

सलिल शब्द की व्युत्पति तो ठीक प्रतीत की गयी है, परन्तु उस व्युत्पत्ति से जो भावार्थ समझा गया है, वह ठीक प्रतीत नहीं होता। सलिल दो पदार्थ के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिलने के भाव को प्रकट नहीं करता। जैसा सायण ने जल और दूध बताया है अथवा जैसे अन्धकार और जगत् की उपमा दी गयी है। दोनों तुलनायें अशुद्ध हैं।

सलिल शब्द की व्युत्पति है अणुओं की गति से उत्पन्न होने वाली अवस्था। एक डिब्बे में बालू का उदाहरण अधिक उपयुक्त होगा। डिब्बे में रेत के कण परस्पर ढीले-ढाले संयुक्त होते हैं। यही कारण है कि एक डिब्बे की बालू यदि किसी कटोरे में डालें तो कटोरे के भीतर का रूप धारण कर लेती है और गिलास में डालें तो गिलास के भीतर का रूप स्वीकार कर लेती है। ऐसी ही अवस्था सलिल पदार्थ की होती है। प्रकृति परमाणु रूप में थी और उसके परमाणु बालू के कणों की भाँति परस्पर असंयुक्त थे।

यह कहा गया है कि इस स्वधा पर बहुत तप किया गया और इसमें से एक प्रकट हुआ।

प्रकृति के इस रूप को मनु स्मृति में भी ऐसे ही वर्णन किया गया है जैसे मन्त्र में। वहाँ कहा है—

आशीदिदं तमोभूतमप्रज्ञातमलक्षणम्।
अप्रतर्क्यमविज्ञेयं प्रसुप्तमिव सर्वतः॥ (मनु० १-५)

सृष्टि रचना से पूर्व की बात कहते हुए ऋषि ने कहा कि यह (प्रकृति) तम (अन्धकार से आच्छादित) थी, न जानी जा सकने योग्य थी और बिना चिह्नों के होने के कारण युक्ति का विषय भी नहीं थी। सब ओर से सोई हुई सी दिखायी देती थी।

वेद मन्त्र में कहा है कि इसमें यत्न किया गया। यत्न का ही नाम तप है। तप का अर्थ है किसी कार्य की सिद्धि के लिये निरन्तर यत्न करना। यह यत्न किसने किया? वह वेद में इस प्रकार वर्णित है—

कामस्तदग्रे समवर्तताधि मनसो रेतः प्रथमं यदासीत्।
सतो बन्धुमसति निरविन्दन् हृदि प्रतीष्या कवयो मनीषा॥
(ऋ० १०-१२९-४)

पदार्थ :—

(कामः) कामना। (तत्) वह। (अग्रे) सृष्टि रचना से पूर्व। (सम् अवर्तत) सम्यक् रूप में विद्यमान था। (अधि मनसः) मन में अधिष्ठित) (यत् प्रथमम् रेतः आसीत्) जो प्रथम बीज था।

(सतः बन्धुम्) रूप की अभिव्यक्ति अर्थात् रूप में बाँधने वाली। (असति)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सबसे पहले कामना सम्यक् रूप में विद्यमान थी। मन में अधिष्ठित वह कामना इस सृष्टि का बीज बन गयी। एक क्रान्तदर्शी अति बुद्धिमान तत्त्व है। वह बार-बार हृदय में विचार कर इस जगत् की रचना को करता है।

कामना का अभिप्राय है परमात्मा का यज्ञ रूप में सृष्टि रचने का विचार। इस भाव को एक अन्य स्थान पर भी वेद में कहा गया है। वहाँ मन्त्र है —

अग्निमीले पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्। होतारं रत्नधातमम्॥
(ऋ० १-१-१)

सृष्टि रचना के आरम्भ में यज्ञ के देव (परमात्मा) ने ऋत्विक् बनकर यह रचना कार्य किया। इस कार्य में अग्नि (ऊर्जा) द्वारा धन-सम्पदा मिलता है और हम उसकी स्तुति करें, अर्थात् उसके गुण 'कर्म' स्वभाव को जानें।

यहाँ परमात्मा को सृष्टि रचना का यज्ञ अर्थात् कल्याण करने वाला कहा है। इस भाव की पुष्टि भगवद् गीता में की गयी है।

सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः। (भ० गी० ३-१०)

प्रजापति ने कल्प के आरम्भ में यज्ञ सहित प्रजा की सृष्टि की।

कहने का अभिप्राय यह है कि यह वेद की मान्यता है कि इस सृष्टि की रचना परमात्मा ने लोक कल्याण के लिये की थी। यज्ञ का अर्थ वह कार्य है जो सबके कल्याण के लिये किया जाये।

इस विवेच्य मन्त्र में कहा है कि परमात्मा के मन में लोक कल्याण की कामना सदा उपस्थित रहती है। वह ही जगत् रचना में बीज बन जाती है।

तिरश्चीनो विततो रश्मिरेषामधः स्विदासी३दुपरि स्विदासी३त्।
रेतोधा आसन् महिमान आसन् त्स्वधा अवस्तात् प्रयतिः परस्तात्॥
(ऋ० १०-१२९-५)

रूप रहित को। (निर अविन्दन्) प्राप्त करते हैं। (हृदि) हृदय में। (प्रति इष्य) पुनः विचार कर। (कवयः) क्रान्तदर्शी। (मनीषा) बुद्धि से।
ऋ० १०-१२९-४

पदार्थ —

(तिरः चित् विततः) बहुत दूर-दूर तक व्याप्त हुई। (रश्मिः) सूर्य किरणों के समान तरंगें। (एषाम्) इनकी। (अधः) नीचे। (स्वित् आसीत्) स्थित थीं। (उपरि स्वित् आसीत्) ऊपर स्थित थीं। (रेतः धाः आसन्) बीज को धारण करने वाला तत्त्व भी था। (महिमानः आसन्) महान् शक्ति-शाली थी। (स्वधा) प्रकृति। (अवस्तात्) नीचे स्थित थी। (प्रयतिः) करने वाला। (परस्तात्) ऊपर स्थित है। (ऋ० १०-१२९-५)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कामना बीज बन कार्य करती है। इस विषय में कहा है कि कामना की रश्मियां अर्थात् तरंगें (waves) दूर-दूर तक चलती हैं और इनके नीचे तथा ऊपर स्थित प्रकृति पर प्रभाव पड़ता है।

प्रकृति नीचे स्थिति है और सामर्थ्यवान क्रान्तदर्शी ऊपर स्थित है। यहाँ सृष्टि रचना का वर्णन आरम्भ किया गया है। पूर्व के मन्त्र (१०-१२९-४) में कहा गया है कि परमात्मा की कामना ही बीज रूप हो जाती है और इस मन्त्र (१०-१२९-५) में बताया गया है कि बहुत दूर-दूर तक ऐसे फैलती है जैसे शक्ति की तरंगें फैलती हैं और स्वधा (प्रकृति) को रचना कार्य पर लगा देती है।

यह बताया जा चुका है कि स्वधा (प्रकृति) सलिल है अर्थात् बहने वाला तरल पदार्थ है। बहने वाला पदार्थ सदा छोटे-छोटे कणों में होता है। इन कणों के कारण ही इसमें बहने का गुण (fluidity) आता है। हमने यह भी बताया है कि जल भी इस कारण बह सकता है; क्योंकि इसके अणु परस्पर ढीले-ढीले जुड़े होते हैं। यही बात प्रकृति की है। यह परमाणु रूप होती है। जल में और इसमें अन्तर यह है कि जल के अणु प्रकृति के कणों से बहुत बड़े-बड़े होते हैं। परिणाम स्वरूप प्रकृति में सलिलत्व जल से अधिक होता है।

जब परमात्मा की बीज रूपी सामर्थ्य तरंगों में फैलने लगती है तो परमाणुओं में परिवर्तन आरम्भ हो जाता है।

सांख्य दर्शन में लिखा है—**'सत्त्व रजस् तमसां साम्यावस्था प्रकृति'** अर्थात् प्रकृति के प्रत्येक परमाणु में तीनों गुण एक-दूसरे को निष्प्रभाव करते रहते हैं। परमात्मा की शक्ति इन गुणों की साम्यावस्था को भंग कर देती है और तब ये गुण प्रकृति में परिवर्तन आरम्भ करने लगते हैं।[1]

परमात्मा की यज्ञमय कामना से उसका तेज स्वधा में रचना करता है। इसी विषय में और भी कहा है। सृष्टि रचना के समय कोई देखने वाला नहीं था।

को अद्धा वेद क इह प्र वोचत् कुत आजाता कुत इयं विसृष्टिः।
अर्वाग्देवा अस्य विसर्जनेनाऽथा को वेद यत आबभूव॥

(ऋ० १०-१२९-६)

पदार्थ :—

(अद्धा कः वेद) ठीक-ठीक कौन जानता है। अर्थात् कोई नहीं जान सकता है। (कः) कौन। (इह) यहाँ पर। (प्रवोचत्) ठीक-ठीक बता सकता

---

१. व्याख्या के लिये देखें 'विज्ञान और विज्ञान' पृष्ठ ३९ से ४० तक।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कौन ठीक-ठीक जान सकता है कि कहाँ से यह विविध प्रकार की सृष्टि उत्पन्न हुई है। विद्वान लोग तो सृष्टि रचना से पीछे उत्पन्न हुए। दिव्य गुण युक्त पदार्थ रचना होने के उपरान्त ही प्रकट हुए। अतः कौन इसके बनने के कारण का ठीक-ठीक वर्णन कर सकता है ?

इयं विसृष्टिर्यत आबभूव यदि वा दधे यदि वा न।
यो अस्याध्यक्षः परमे व्योमन् त्सो अङ्ग वेद यदि या न वेद।
(ऋ० १०-१२९-७)

पूर्व के मन्त्र में कहा गया है कि वह एक क्रान्तदर्शी मनीषि था। वह कौन था ? उसके विषय में कहा गया है। जिसने यह विविध प्रकार की सृष्टि रचना की है, वह ही इसको धारणकर रहा है। मन्त्र कहता है कि यही इसका अध्यक्ष है।

वह महान् व्योम अर्थात् आकाश (Space) में विद्यमान है और वह इस (रचित सृष्टि) को जानता है।

मन्त्र में दो प्रश्न पूछे गये हैं। पहले यह पूछा है कि वह इस सृष्टि को धारण कर रहा है अथवा नहीं ? धारण करने का अभिप्राय है पालन करना।

है। (कुतः) कहाँ से। (आजाता) चारों ओर से प्रकट हुई है। (इयं) यह। (कुतः) कहाँ से। (विसृष्टिः) विविध प्रकार की रचना।

(अर्वाक्) पीछे। (देवाः) दिव्य गुण वाले। (अस्य) इसके। (विसर्जनेन) विविध प्रकार की रचना से। (अथाकः वेद) तो फिर कौन इसको जानता है। (यतः) जिस कारण से यह। (आ बभूव) चारों ओर प्रकट हुआ। (ऋ०-१०-१२९-६)

पदार्थ—

(इयं विसृष्टिर्यत) जिससे यह विविध प्रकार की सृष्टि। (आबभूव) चारों ओर से प्रकट हुई। (यदि वा दधे) और जो धारण कर रहा है। (यदि वा न) अथवा कहो कि वह नहीं धारण कर रहा। अभिप्राय है कि निश्चय से धारण कर रहा है। यदि नहीं धारण कर रहा तो कौन कर रहा है ?

(यः) जो। (अस्य) इसका। (अध्यक्षः) अध्यक्ष है। (परमे व्योम) परम आकाश में अर्थात् अन्तरिक्ष (Space) में। (सः) वह। (अङ्ग वेद) है विद्वान। जानो। (यदि वा न वेद) और यदि (तुम) नहीं अभिप्राय यह कि कौन जानता है ? वही जानता है जो इसका अध्यक्ष है।

(ऋ० १०-१२९-७)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस प्रश्न के उत्तर में कहा गया है कि वह इसका अध्यक्ष है। दूसरा प्रश्न है कि—हे विद्वान ! उसे जानें। यदि नहीं जानते तो कौन जान सकता है ? उत्तर वही है जो पहले प्रश्न का है। अर्थात् वह जो इसका अध्यक्ष है।

इस मन्त्र के भाव को कुछ व्याख्या से भगवद् गीता में इस प्रकार वर्णन किया है—

बहिरन्तश्च भूतानामचरं चरमेव च।
सूक्ष्मत्वात्तदविज्ञेयं दूरस्थं चान्तिके च तत्॥ (भ० गी० १३-१५)

अर्थात्—वह परमात्मा सब भूतों के भीतर और बाहर उपस्थित है। वह चर रूप है और अचर भी है। अभिप्राय यह कि वह चलने वाले पदार्थों में और न चलने वाले पदार्थों में भी उपस्थित है। वह सूक्ष्म (अव्यक्त) होने से अविज्ञेय है। साथ ही वह समीप भी है और दूर भी।

इस कण्डिका में यह बताया जा रहा है कि जगत् रचना से पूर्व सब ओर अन्धकार व्याप्त था। इस पर भी उस समय एक पदार्थ विद्यमान था जो स्वयं ही उपस्थित था। अर्थात् वह अनादि और अक्षर तत्त्व है। वह अति सूक्ष्म (अव्यक्त) है अविज्ञेय, अतर्क्य और लक्षणरहित है। उसको वेद ने स्वधा कहकर स्मरण किया है। उसे ही सांख्य प्रकृति के नाम से कहता है।

इस कण्डिका में यह भी कहा गया है कि स्वधा पदार्थ सोया हुआ प्रतीत होता है और इसे ही क्रियाशील कर इसमें से सृष्टि-रचना की गयी। किसने की ? इसका भी उत्तर दिया गया है। एक अन्य तत्त्व है। वह कल्याण करने की भावना से कामना कर रहा था। यह कामना सदा रहती है और समय पाकर बीज बन स्वधा को सृष्टि-रचना की प्रेरणा करती है और रचना होने लगती है।

यह कामना कौन करता है और किसके कल्याण के लिये करता है ? इन प्रश्नों में से प्रथम प्रश्न का यह उत्तर दिया गया है कि वह परमात्मा है। वह पूर्ण आकाश (space) में विद्यमान है। वह सबका पालन कर्ता है और पूर्ण प्रपंच का अध्यक्ष है। प्रपंच का अर्थ दृश्यमान जगत् का विस्तार है। इसी भाव को ब्रह्मसूत्रों में इस प्रकार कहा है—

अक्षरमम्बरान्तधृतेः॥ (ब्र० सू० १-३-१०)

अर्थात् आकाश के अन्त तक धारण करने वाला परमात्मा है।

: २ :

इस कण्डिका में हम ऋग्वेद, दशम् मण्डल के १३०वें सूक्त का भावार्थ दे रहे हैं। इस सूक्त का देवता भी वही है जो सूक्त १२९ का है। वह है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'भाववृत्तम्' अर्थात् सृष्टि होने का वृत्तान्त। इसमें पूर्व सूक्त का भाव वर्णन किया गया है। मूल प्रकृति पर परमात्मा की कामना का प्रभाव किस प्रकार हुआ ? इसमें उसका ही संक्षेप में वृत्तान्त है। यह कहा है कि जो सृष्टि-रचना का यज्ञ हो रहा है उसमें सब ओर से तन्तुओं के द्वारा बुनना एक सौ वर्ष तक चलता रहता है।

यो यज्ञो विश्वतस्तन्तुभिस्तत एकशतं देवकर्मेभिरायतः।
इमे वयन्ति पितरो य आययुः प्र वयाप वयेत्यासते तते ॥
(ऋ० १०-१३०-१)

शब्द है 'देवकर्मेभि'—देवताओं के कर्मों द्वारा। एक सौ कर्मों द्वारा। इसका भाव यही है कि १०० देव वर्षों तक कर्मों द्वारा। इसे ही १०० देव वर्ष काल कहा गया है। अर्थात् जब कामना रूपी बीज प्रकृति में पड़ा, तब प्रकृति में परिवर्तन आरम्भ हुए और एक से दूसरा पदार्थ और दूसरे से तीसरा पदार्थ क्रमशः बनते रहे। इस निर्माण को दिशा देने वालों का नाम प्रजापति अथवा पितर कहा गया है। सृष्टि के आरम्भ से लेकर आज तक छः मनु अर्थात् मन्वन्तर हो चुके माने जाते हैं।

इस सब प्रक्रिया का वर्णन मनु स्मृति में इस प्रकार मिलता है—

तस्मिन्नण्डे स भगवानुषित्वा परिवत्सरम्। (मनु० १-१२)

अर्थात्—उस हिरण्यगर्भ में परमात्मा स्वयं एक सौ वर्ष तक बैठा रहा।

वेद मन्त्र में कहा है कि वे देव वर्ष थे। इन सौ दिव्य वर्षों में कुछ प्रजापति, कदाचित् चार, उस अण्डे में काम करते रहे। छः प्रजापति जो अब तक हो चुके हैं; उनके नाम हैं स्वरोचिष, उत्तम, तामस्, रैवत, चाक्षुष और विवस्वत्सुत। इनमें से दो प्रजापति तो पृथिवी पर वनस्पतियों और प्राणियों की रचना के कार्य में संलग्न माने जाते हैं। अतः पूर्व के चार प्रजापति ही एक सौ

पदार्थ—

(यः) जो। (यज्ञोः) यज्ञ। (विश्वतः) सब ओर से। (तन्तुभिः) तन्तुओं द्वारा। (ततः) विस्तृत। (एकशतं) एक सौ। (देव) देव वर्ष। (कर्मिभिः) कर्म द्वारा। (आयतः) विस्तृत हुआ है।

(इमे) ये सब। (वयन्ति) बुनते हैं। (पितरः) पितर अर्थात् प्रजापति अथवा मनु अर्थात् मन्वन्तर। (ये) जो। (आयुयः) बनाया। (आसते) विद्यमान है। (तत) विस्तृत। (प्रव्याप-प्र-वय-अप-वय) अर्थात् ऊपर को और नीचे को बुना। (ऋ० २०-१३०-१)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देव वर्ष तक हिरण्यगर्भ में कार्य करते रहे, कहे जा सकते हैं।

इस मन्त्र में तन्तुओं से अभिप्राय पंच महाभूतों से है। उनके ही ऊपर-नीचे से बुनने से जगत् के विविध पदार्थ बने हुए हैं। तन्तु का अर्थ है तार तथा धागा। पंच महाभूत परस्पर ऐसे जुड़े रहते हैं जैसे कपड़े में तन्तु ऊपर नीचे बुनने के समय होते हैं। देव वर्ष का अभिप्राय सौर वर्ष से नहीं है। उस समय अभी सूर्य नहीं बना था। इस कारण वह वर्ष, जो सूर्य के चारों ओर पृथिवी के एक चक्कर लगाने का काल होता है, उससे यहाँ अभिप्राय नहीं है।

ज्योतिष शास्त्र के ज्ञाता कहते हैं कि सृष्टि-रचना के उस काल से, जब प्रकृति में बीज पड़ा, लेकर इसके पुनः मूल प्रकृति में पूर्णतः लय हो जाने तक का काल ब्रह्म दिन है। इसे ब्रह्मा का दिन माना जाता है। इस ब्रह्म दिन को १२,००,००,००० देव वर्षों में बाँटा जाता है और इनमें से एक सौ वर्ष तक हिरण्यगर्भ में कार्य होता रहा था।

यह भी भारतीय ज्योतिष शास्त्र में कहा गया है कि १२,००,००,००० देव वर्षों के ४,३२,००,००,००० सौर वर्ष होते हैं। अतः एक देव वर्ष बराबर है ३६० मानवी (सौर) वर्षों के।

पुमां एनं तनुत उत् कृणत्ति पुमान् वि तत्ने अधि नाके अस्मिन्।
इमे मयूखा उप सेदुरू सदः सामानि चकुस्तसराण्योतवे॥
(ऋ०—१०-१३०-२)

यह बताकर कि पंच महाभूतों से इस जगत् के विविध पदार्थ ऐसे बने हैं जैसे ताने-बाने से विविध प्रकार के कपड़े बुने जाते हैं, यह पूछा गया है कि वह कौन है जो इस यज्ञ रूप ताने-बाने को करता है। यहाँ समाधान किया है कि परमात्मा से तरंगों के रूप में ऊर्जा (तेज) प्रकट होती है और प्रकृति में निर्माण कार्य आरम्भ हो जाता है। तरंगें तिरछी गति में चलती हैं। वे तरंगें

पदार्थ—

(पुमान्) परम पुरुष। (एनम्) इसको अर्थात् संसार रूपी यज्ञ को जैसा पूर्व के मन्त्र में वर्णन किया गया है। (तनुत) विस्तार करता है। (उत् कृणाति) समाप्त करता है। (पुमान्) परम पुरुष। (तत्ने) विस्तृत करता है। (नाके) आकाश में। (अस्मिन्) इसमें।

(इमे) वे दोनों। (मयूखः) किरणें अथवा तरंगे। (उपसेदुः) उपस्थित होते हैं। (उ सदः) और देव स्थान में। (सामानि) समान रूप। (चकुः) चलते हुए। (तसराणि) तिरछी गति से। (ओतवे) बुनने के लिये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकृति के साम्यावस्था में परमाणुओं से टकराती हैं और उनकी साम्यावस्था भंग कर देती हैं।[1]

परमाणुओं के सत्त्व, रजस् और तमस् गुण अन्तर्मुखी होते हैं। अतः वे एक दूसरे के प्रभाव को विलीन कर रहे होते हैं। परमात्मा के तेज से वे गुण बहिर्मुख हो जाते हैं। तब उन गुणों से उत्पन्न प्रभाव परस्पर एक-दूसरे को विलीन करने के स्थान बाहर के परमाणुओं से आकर्षण-विकर्षण करने लगते हैं और परमाणुओं में संयोग-वियोग होने लगता है। यह रचना का आरम्भ कहा जा सकता है। इसे ही (तनुत तत्ने) विस्तार किया जाता है, कहा है।

यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि यह किस प्रयोजन से था और कितने बड़े स्थान पर किया गया? इसके विषय में ऋ० १०-१३०-३ में बताया गया है।

कासीत् प्रमा प्रतिमा किं निदानमाज्यं किमासीत् परिधिः क आसीत्।
छन्दः किमासीत् प्रउगं किमुक्थं यद्देवा देवमयजन्त विश्वे॥
(ऋ० १०-१३०-३)

पूर्व के मन्त्र (१०-१३०-२) में यह कहा गया है कि परमात्मा की कामना ने जब स्वधा (प्रकृति) में बीज रूप होकर कार्य आरम्भ किया तो सृष्टि-रचना हुई। हमने उस स्थान पर यह बताया है कि परमात्मा के तेज से प्रकृति के

पदार्थ—

(का) क्या। (असीत्) था। (प्रमा) परिमाण। (प्रतिमा) परिमाण मापने का माधन। (किम्) क्या था। (निदानम्) सबका निदान अर्थात् कारण और फल। (आज्यम किम् आसीत्) सामग्री क्या थी अर्थात् सृष्टि-रचना में आहुति के लिये क्या था। (परिधिः आसत्) यज्ञ की सीमा अर्थात् यह कहाँ तक फैला हुआ था।

(छन्दः किम् आसीत्) उद्देश्य अथवा (रहस्य) क्या था। (प्र उ गम्) आरम्भ में आने वाला अर्थात् हिरण्यगर्भ क्या था? (किम् उक्थम्) क्या कहा गया था। (यत्) जब। (विश्वे देवाः) समस्त देवगण। (देवम् अयजन्त) परमात्मा का भजन कर अर्थात् परमात्मा के यज्ञ में सहायक हो रहे थे। (ऋ० १०-१३०-३)

---

१. परमाणुओं की साम्यावस्था कैसे भंग होती है, इस विषय में विस्तृत वर्णन श्री गुरुदत्त की रचना विज्ञान और विज्ञान में पृष्ठ ३८-४४ देखें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परमाणुओं के गुण परस्पर विलीन होने के स्थान पड़ोस के परमाणुओं पर आकर्षण-विकर्षण करने लगे तो परमाणुओं में संयोग-वियोग होने लगा और रचना-कार्य आरम्भ हो गया।

अब इस मन्त्र (१०-१२९-३) में यह बताया है कि यह यज्ञ (सृष्टि रचना का कार्य) क्या था? इसका परिमाण कितना था अर्थात् कितने लम्बे-चौड़े स्थान पर परमात्मा के तेज ने यह कार्य आरम्भ किया? इस कार्य-क्षेत्र के परिमाण को जानने का साधन क्या था? इस कार्य का कारण और परिणाम क्या था? सृष्टि-क्रम में किस-किस पदार्थ का प्रयोग किया गया? इस सृष्टि रचना यज्ञ का घेरा कितना बड़ा था? कामना अथवा उद्देश्य क्या था? रचना आरम्भ किससे हुई? सृष्टि-रचना में कहाँ क्या कहा गया? (क्या अभिप्राय था?)

सृष्टि-रचना के लक्षण भी किये गये हैं। यह कहा है कि उक्त सब कुछ क्या और कैसे हुआ? सम्पूर्ण देवता परमात्मा का भजन कर रहे थे अथवा परमात्मा के प्रति अपनी-अपनी भक्ति (कार्य) प्रस्तुत कर रहे थ।

यहाँ भी अन्य अनेकों स्थानों की भक्ति प्रश्न पूछकर उत्तर की ओर संकेत किया है। उत्तर है कि जगत् रचना बहुत बड़े स्थान पर हुई है और परिणाम जगत् के रूप में दिखाई दे रहा है। सामग्री तेज और स्वधा थी।

अग्नेर्गायत्र्यभवत् सयुग्वोष्णिहया सविता सं बभूव।
अनुष्टुभा सोम उक्थैर्महस्वान् बृहस्पतेर्बृहती वाचमावत्।

(ऋ० १०-१३०-४)

पूर्व के मन्त्र (१०-१३०-३) में कहा गया है कि जगत् की रचना परमात्मा के तेज से हुई। उस रचना में अग्नि के साथ गायत्री सहयोगी हो गयी। उष्णिक छन्द के साथ सूर्य का सहयोग हो गया।

अनुष्टुप छन्द से सूर्य स्तुति करने लगा और महान् तेजस्वी हो गया।

पदार्थ—

(अग्नेः) अग्नि की। (गायत्री) गायत्री छन्द। (अभवत्) हुई। (सयुग्वा) सहयोगी। (उष्णिहया) उष्णिक छन्द के साथ। (सविता) सूर्य। (सं बभूव) उससे संयुक्त हो गया।

(अनुष्टुभा) अनुष्टुप छन्द से। (सोम) सूर्य। (उक्थैः) स्तुतियों से। (महस्वान्) महान् तेजस्वी हुआ। (बृहस्पतिः) बृहस्पति को। (बृहती) बृहती छन्द। (वाचम्) वाणी को। (आवत्) प्राप्त हुआ। (ऋ० १०-१३०-४)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बृहस्पति बृहती छन्द को प्राप्त हुआ।

यह वेद में अन्य स्थानों पर और शतपथ ब्राह्मण में स्वीकार किया गया है कि त्रयी विद्या अर्थात् ऋक्, यजु और साम हिरण्यगर्भ के बनते ही कहे जाने लगे थे। यही बात यहाँ कही गयी है। कदाचित् उस समय इनका नाम ऋक्, यजु और साम नहीं था। यह त्रयी विद्या कहलाती थी।

सूर्य और बृहस्पति अनुष्टप और बृहती छन्द गान करने लगे थे।

इस सम्बन्ध में यह भी लिखा है कि मित्र और वरुण देवता को विराट छन्द गान करने को मिला।

विराण्मित्रावरुणयोरभिश्रीरिन्द्रस्य त्रिष्टुबिह भागो अह्नः।
विश्वान् देवाञ्जगत्या विवेश तेन चाक्लृप्र ऋषयो मनुष्याः॥
(ऋ० १०-१३०-५)

विराट छन्द मित्र और वरुण दोनों का आश्रय पा गया। त्रिष्टुप छन्द इन्द्र का आश्रय पा गया। ये दिन के देवता हैं। समस्त देवताओं को जगति छन्द चारों ओर से प्राप्त हुआ। उससे निर्माण हुए ऋषि और मनुष्य।

इन दो मन्त्रों (१०-१३०-४,५) में वेद के आविर्भाव का वर्णन किया गया है। यह कहा गया है कि सूर्य से अनुष्टुप छन्द, बृहस्पति से बृहती छन्द, मित्र और वरुण से विराट् छन्द, इन्द्र को त्रिष्टुप छन्द गान करने को मिला। समस्त देवताओं को जगति छन्द मिला। इन देवताओं से उच्चारण किये हुए छन्दों से ऋषिगण और मनुष्य निर्माण हुए।

शब्द है चाक्लृप्र। इसका अर्थ सायण करता है—सृष्टा आसन्। रचे गये। पण्डित जयदेव इसका अर्थ करते हैं—सामर्थ्यवान हुए। हम इसका भाव यह समझे हैं कि ऋषि और मनुष्य छन्दों को समझ ज्ञानवान् हुए। 'रचना' अर्थ अप्रासंगिक प्रतीत होते हैं। सामर्थ्यवान होने से ज्ञानवान का अभिप्राय ही प्रतीत होता है।

पदार्थ—

(विराट्) विराट् छन्द। (मित्र वरुणयोः) मित्र और वरुण दोनों को। (अभिश्री) आश्रित हुआ अर्थात् इन देवताओं को मिला। (इन्द्रस्य) इन्द्र का। (त्रिष्टुप) त्रिष्टुप छन्द। (इह) यहाँ पर। (भागः) अंश है। (अह्नः) दिन के।

(विश्वान् देवान्) सब देवताओं का। (जगति) जगति छन्द। (आविवेश) चारों ओर से प्राप्त। (तेन) उससे। (चाक्लृप्र) सामर्थ्यवान हुए। (ऋषयो) ऋषि और (मनुष्यः) मनुष्य। (ऋ० १०-१३०-५)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूर्य, बृहस्पति, मित्र, वरुण, इन्द्र और अन्य देवता तो निर्जीव जड़ पदार्थ हैं। वे यदि छन्द उच्चारण करते हैं तो परमात्मा की सामर्थ्य से ही करते हैं। यह असम्भव नहीं है। यह ऐसे ही है जैसे कि मनुष्य का मुख जो जड़ प्रकृति का बना हुआ है, मन्त्र उच्चारण करता है। यह मनुष्य में उपस्थित चेतन आत्मा ही गाता है। इसी प्रकार इन जड़ देवताओं से चेतन परमात्मा इन मन्त्रों का गान करता है। यह गान तरंगों के रूप में ही होता है।

इस मन्त्र गान को पृथिवी पर के ऋषिगण सुनकर मानवी भाषा में मनुष्यों को बताते हैं। इससे दोनों ज्ञान रूपी सामर्थ्य प्राप्त करते हैं।

हम भूमिका में बता चुके हैं कि जब हिरण्यगर्भ ही था तभी त्रयी विद्या का आविर्भाव हुआ था। वहाँ इस त्रयी विद्या को ब्रह्म के नाम से लिखा गया है। इसका स्पष्टीकरण वेद में किया गया है।

चाक्लृप्रे तेन ऋषयो मनुष्या यज्ञे जाते पितरो नः पुराणे।
पश्यन् मन्ये मनसा चक्षसा तान् य इमं यज्ञमयजन्त पूर्वे॥

(ऋ० १०-१३०-६)

उनसे (देवताओं के मन्त्र उच्चारण से) ऋषिगण और मनुष्य ज्ञानवान् हुए। इस यज्ञ में अर्थात् सृष्टि रचना में उत्पन्न होने पर वे सृष्टि के आरम्भ में उत्पन्न होने वाले पितर (पूर्वज) कहलाते हैं। (ऋ० १०-१३०-६)

जो इस मन्त्रोच्चारण के यज्ञ को करते थे उनको मैं मन की दर्शन शक्ति से देखता हूँ और स्वीकार करता हूँ।

इसके विषय में यह कह दिया है कि देवताओं ने छन्द धारण किये।

पदार्थ—

(चाक्लृप्रे) सामर्थ्यवान्=ज्ञानवान हुए। (तेन) उससे। (ऋषयाः मनुष्यः) ऋषि और मनुष्य। (यज्ञे) यज्ञ (रचना) में। (जाते) उत्पन्न होने पर। (पितरः) आदि पुरुष। (नः) हमारे। (पुराणे) प्रथम में।

(पश्यन्) देखता हुआ। (मन्ये) मानता हूँ। (मनसा) मन से अर्थात् दर्शन शक्ति। (चक्षसा) आँखों द्वारा। (तान्) उनको। (य) जो। (इमं) इसको। (यज्ञम्) यज्ञ को। (अयजन्त) सम्पन्न करते थे। (पूर्वे) आरम्भ में।

(ऋ. १०-१३०-६)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सहस्तोमाः सहछन्दस आवृतः सहप्रमा ऋषयः सप्त दैव्याः ।
पूर्वेषां पन्थामनुदृश्य धीरा अन्वालेभिरे रथ्यो३न रश्मीन् ॥
(ऋ १०-१३०-७)

सत् दिव्य गुण सम्पन्न ऋषियों ने ऋचा समूह को छन्दों में सुना। दिव्य गुण सम्पन्न इस कारण कि देवता तो छन्दों का उच्चारण तरंगों में कर रहे थे और तरंगों का समभाव समझने की शक्ति ऋषियों में थी। उन तरंगों को वे मानवी भाषा में कहने के योग्य थे। सहप्रमा का अभिप्राय है मानवी स्वर में गाया और उनके भाव को समझा।

ये ऋषि पूर्व कल्प के संस्कारों से उस समय के व्यवहार और मार्ग का आश्रय पाकर यज्ञ करते थे अर्थात् वेद का अर्थ समझाते थे। वे इस ज्ञान रूपी यज्ञ को ऐसे चला रहे थे जैसे कि घोड़े रथ को चलाते हैं अथवा सारथी लगामों से घोड़ों को चलाता है।

इन दो सूक्तों (१०-१२९ और १३०) में सृष्टि रचना से पूर्व की स्थिति के वर्णन से भूतल पर ऋषिगणों द्वारा परमात्मा के ज्ञान वेद को सुन और समझकर मानवी भाषा में कहने तक का वर्णन है।

यह वर्णन अति संक्षेप में ही किया गया है। इसको अधिक व्याख्या सहित दर्शन शास्त्रों में तथा ब्राह्मण ग्रन्थ और पुराणों में बताया गया है।

एक विहंगम दृष्टि में इसे इस प्रकार वर्णन किया जा सकता है :

सृष्टि-रचना और प्रलय एक-दूसरे के उपरान्त ऐसे चलते रहते हैं जैसे कि एक दीवार घड़ी का पैण्डुलम (तोलक) एक ओर से दूसरी ओर तथा फिर पहली ओर को जाता है। यह भी कहा जा सकता है कि जैसे दिन और रात एक-दूसरे के बाद अनन्त काल से चले आते हैं वैसे ही रचना और प्रलय हो रहे

पदार्थ—

(सहस्तोमाः) ऋचा समूह सहित। (सहछन्दसः) छन्दों के साथ। (आवृत्तः) विद्यमान अथवा छाये हुए। (सहप्रमा) परिमाण अर्थात् स्वर अथवा ज्ञान सहित। (सप्त ऋषयः) सात ऋषिगण। (दैव्याः) दिव्य शक्ति वाले थे।

(पूर्वेषाम्) पूर्व कल्पों में विद्यमान थे। (पन्थाम् अनुदृश्य) पथ अर्थात् व्यवहार को देखकर। (धीरा) बुद्धिमान ऋषिगण। (अन्वालेभिरे) अवलम्ब्य अर्थात् सहारा लेते हैं। (रथयाः न रश्मीन्) रथ के घोड़ों की लगाम खींचने के समान। (ऋ० १०-१३०-७)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं। रचना काल को ब्रह्म दिन कहते हैं और प्रलय काल को ब्रह्म रात्रि। ये बराबर-बराबर होती हैं। एक सहस्र चतुर्युगी की ब्रह्म रात्रि और इतने ही काल का ब्रह्म दिन होता है। एक चतुर्युगी ४३,२०,००० सौर वर्ष की होती है।

इस प्रकार एक सहस्र बार ४३,२०,००० सौर वर्ष का काल ब्रह्म दिन होता है। अतः प्रत्येक ब्रह्म दिन और प्रत्येक ब्रह्म रात्रि ४,३२,००,००,००० सौर वर्ष की होती है।

ब्रह्मरात्रि के समय एक पदार्थ व्यापक रूप में होता है। उसे स्वधा कहा गया है। इसी का नाम सांख्य इत्यादि ग्रंथों में प्रकृति कहा है। यह पदार्थ परमाणु रूप में होता है। अभिप्राय यह कि इस पदार्थ के कण होते हैं जिन्हें परमाणु कहते हैं।

परमाणु उस छोटे-से-छोटे टुकड़े को कहते हैं जिसके और छोटे टुकड़े न किये जा सकें। जगत् रचना से पूर्व पूर्ण रूप से तम अर्थात् अँधकार था। वह प्रकाश जो हम आँखों से देख सकते हैं, उस समय नहीं था। चारों ओर शान्ति और निश्चलता थी।

स्वधा अर्थात् प्रकृति अव्यक्त अर्थात् रूप रहित स्थिति में थी। अव्यक्त उस पदार्थ को कहते हैं जिसकी अनुभूति इन्द्रियों को न हो सके।

सांख्य प्रकृति के प्रत्येक परमाणु को त्रिगुणात्मक कहता है और यह मानता है कि तीनों गुण एक-दूसरे को विलीन करते रहते हैं। यह साम्यावस्था कही जाती है। गुण प्रत्येक परमाणु में ही विलीन हो रहे होते हैं।

परमाणु का विभाजन नहीं हो सकता। साथ ही गुण गुणी से पृथक् नहीं हो सकते। अभिप्राय यह कि ये परमाणु के साथ ही रहते हैं। सांख्य दर्शन में बताया गया है कि—

लघ्वादिघनर्मे. साधर्म्यं वैधर्म्यं च गुणानाम् ॥

(सांख्य १-१२८)

अर्थात्—छोटे होने से तीनों गुण समान हैं, परन्तु प्रभाव परस्पर विरोधी हैं। इस कारण प्रकृति की मूल अवस्था में प्रत्येक परमाणु के भीतर वे परस्पर विरोध करते हुए प्रभाव को विलीन करते हैं।

यदि प्रकृति की मूलावस्था में परमाणुओं की स्थिति का चित्रण करें तो वह इस प्रकार होगी—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

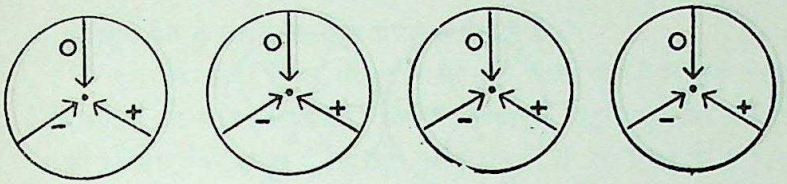

चित्र १

यह उक्त सांख्य सूत्र (१-१२८) में कहा है कि तीनों का (छोटे होने से) विस्तार एक समान है। इस कारण ऊपर के चित्र में प्रत्येक परमाणु के तीन बराबर भाग किये हैं। इसमें तीरों के चिह्न गुणों का प्रभाव प्रकट करने के लिये बनाये हैं। सत्त्व गुण को (+) घन चिह्न से और रजस् को (—) ऋण चिह्न से प्रकट किया है और तमस् गुण को (०) शून्य चिह्न से।

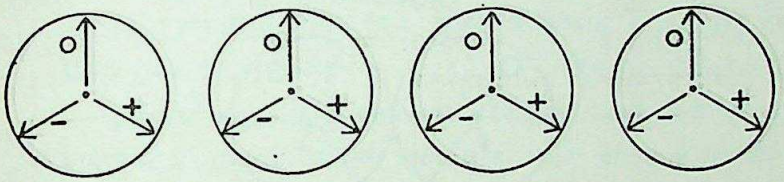

चित्र २

ये परस्पर भीतर ही भीतर एक-दूसरे के प्रभाव को विलीन कर रहे प्रकट किये गये हैं। दूसरे चित्र में वह स्थिति दर्शायी है जब परमात्मा के तेज से गुण अन्तर्मुखी न रहकर बहिः मुख हो जाते हैं। चित्र ३ में यह प्रकट

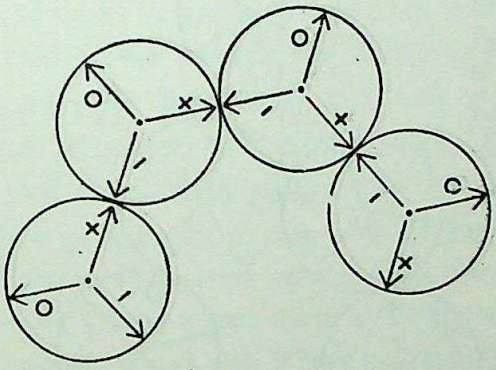

चित्र ३

किया है कि गुणों के आकर्षण-विकर्षण बहिःमुख होने से पड़ोस के परमाणु आकर्षित हो समीप-समीप आने लगते हैं। चित्र संख्या ४,५,६ में यह प्रकट किया है कि कैसे परमाणु समूह बन जाते हैं जो सामूहिक रूप में सतोगुण प्रधान,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

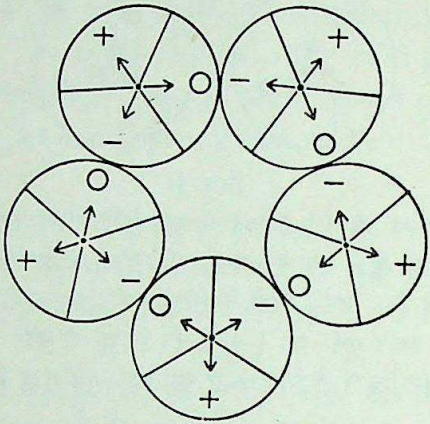

चित्र ४

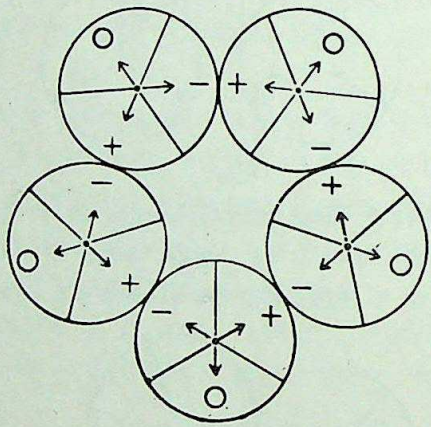

चित्र ५

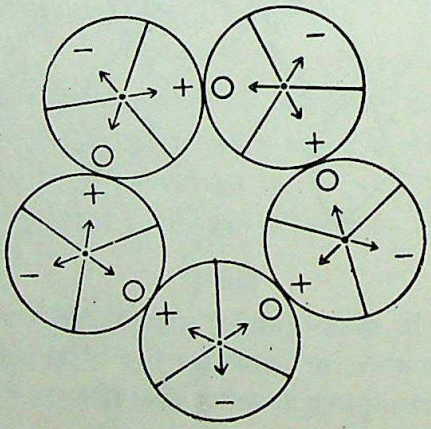

चित्र ६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रजोगुण प्रधान अथवा तमोगुण प्रधान हो जाते हैं।[1]

इन वेद मन्त्रों में यह भी बताने का यत्न किया गया है कि इस रचना का रचयिता एक कवि (क्रान्तदर्शी) मनीषि तत्त्व है। यहाँ परमात्मा के अस्तित्त्व को स्वीकार किया गया है। परन्तु दर्शन शास्त्रों में तो जगत् के इस निमित्त कारण तत्त्व को युक्ति से सिद्ध किया गया है।

वास्तव में वेद का पूर्ण आधार परमात्मा की मान्यता ही है। वेद को ईश्वरीय ज्ञान कहा जाता है। इसी कारण वैदिक परिपाटी के दर्शन शास्त्रों ने परमात्मा के अस्तित्त्व को वेद के अतिरिक्त भी सिद्ध करने का यत्न किया है।

दर्शन शास्त्र (ब्रह्म सूत्र) इसमें युक्ति करता है—

(१) जन्माद्यस्य यतः। (२) शास्त्र योनित्वात्। (३) तत्तु समन्वयात्। (४) ईक्षतेर्नाशब्दम् (ब्र० सू० १-१-१,२,३,४)

इनका अभिप्राय यह है कि रचना करने वाला, प्रथम ज्ञान देने वाला, कार्य जगत् में समन्वय उत्पन्न करने वाला और ईक्षण करनेवाला ब्रह्म है। रचना कार्य बिना कर्त्ता के नहीं होता। अतः इस रचित सृष्टि का करने वाला वह है। इसी प्रकार मनुष्य को मूल ज्ञान देनेवाला कोई है। कार्य जगत् में सब पदार्थों में समन्वय परमात्मा कर रहा है और रचना-आरम्भ और प्रलय काल का निश्चय करनेवाला परमात्मा है। ये काम बिना किसी के किये नहीं हो सकते और संसार के कार्यों को करनेवाला परम सामर्थ्यवान्, परम ज्ञानवान और परम नियन्त्रण रखनेवाला होना चाहिए। वह परमात्मा ही है।

इस प्रकार युक्ति से किसी कर्त्ता, भर्त्ता, मन्ता, द्रष्टा और महेश्वर के अस्तित्त्व को मानना पड़ता है और उसी बात को वेद ने दो शब्दों में वर्णन कर दिया है। वहाँ कवि और मनीषी शब्दों का प्रयोग किया गया है।

वर्तमान युग के वैज्ञानिक भी जगत् रचना और जगत् की वर्तमान अवस्था पर बहुत खोज कर रहे हैं। उन्होंने बड़ी-बड़ी दुरबीन और अनेकों प्रकार के अन्य यन्त्र बना लिए हैं जिनसे न केवल वे बहुत दूर की वस्तु को देख लेते हैं, वरन् वे उनकी गतिविधि से उनके बनने के विषय में भी अनुमान लगा रहे हैं।

पाश्चात्य वैज्ञानिक भाषा में विश्व के ज्ञान को 'Cosmogony' कहते हैं। 'कॉस्मोगॉनी' का लक्षण करते हुए यह कहा गया है—

---

१. इस विषय में अधिक व्याख्या से पढ़ने के लिए देखें 'विज्ञान और विज्ञान' पृ० ३९-४३

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

The branch of astronomy with the evolutionary behaviour of the universe and the origin of its various characteristic features. While early cosmogonical theories were limited to the problem of the origin of our planetary system, modern cosmogony embraces the study of the origin of giant stellar galaxies, single and multiple stars, planetary system in general and finally the origin of the various chemical elements which constitute the universe. (Ency. Brit. 1967 ed. Vol. 6-B p. 578 a.)

अर्थात्—'कास्मोगॉनी' खगोल विद्या की वह शाखा है जिसमें जगत् के विकासीय व्यवहार और जगत् की विविध विशेषताओं की उत्पत्ति का वर्णन किया जाता है। जगत् विज्ञान के प्राचीन ज्ञाता अपने नक्षत्र जगत् के उत्पन्न होने के प्रश्न में ही सीमित थे और वर्तमान युग का वैज्ञानिक महान् नक्षत्र समूहों की, अकेले और सामूहिक तारागणों की तथा नक्षत्र मण्डल की उत्पत्ति से लेकर अन्त में रासायनिक तत्त्वों के रासायनिक परमाणुओं के बनने तक पहुँच गया है।

हमारा इसमें कहना यह है कि उपर्युक्त दावा वास्तव में वैदिक ज्ञान की तुलना में बहुत कम है। वैदिक ज्ञान जगत् के मूल पदार्थ के विषय के साथ-साथ यह भी बताता है कि उसमें से कैसे यह रूपवान् जगत् बना है। साथ ही पदार्थों की रचना के विषय में यह अद्भुत ज्ञान का देने वाला है। सम्भव यही प्रतीत होता है कि वेद में जगत् और उसकी रचना का जो ज्ञान दिया गया है, वह 'ऐन्साईक्लोपीडिया' के लेखक को ज्ञात नहीं था।

जब तक यह पता न चले कि इस जगत् का मूल पदार्थ क्या है, कैसा है और किस प्रकार उस निर्जीव मूल पदार्थ में गति उत्पन्न हुई, तब तक जो कुछ भी जगत् रचना के विषय में कहा जायेगा, वह वृक्ष के बीज और मूल को छोड़कर उसके पत्ते गिनने के समान होगा।

हमने वेदों में से जो कुछ ऊपर वर्णन किया है, वह उसका अंश मात्र ही है जो वहाँ वर्णित है। तब भी आधुनिक 'कॉस्मोगॉनी' से बहुत अधिक ही है।

हमने वर्णन किया है कि जगत् बनने से पहले यह स्थान तम् (अन्धकार) से व्याप्त था। इसमें जो कुछ था, वह होते हुए भी इन्द्रियों का विषय नहीं था। वर्तमान विज्ञान इसमें यह समझता है कि रासायनिक परमाणु (atom)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में जो तीन प्रकार के कण (particles) उपस्थित हैं, वे अपना विकल्प भी रखते हैं।

अर्थात् इलैक्ट्रोन पर (—) ऋण-विद्युत का आवेशन (charge) होता है और इलैक्ट्रोन की तुलना का ही एक कण होता है जिस पर धन (+) आवेशन होता है। इसी प्रकार (+) धन आवेशन वाले प्रोटोन की तुलना वाला (—) ऋण आवेशन वाला प्रोटोन भी पाया जाता है। ये (+) धन इलैक्ट्रोन और (—) ऋण प्रोटोन (antimatter) कहे गये हैं।

साथ ही वर्तमान वैज्ञानिक यह कहते हैं कि—

However if an atom of antimatter were to collide with an atom of ordinary matter the two would immediately undergo mutual and complete anhillation with mesons and other unstable particles being created. Within a fraction of a second all of these unstable particles would be spontaneously transformed into radiant energy—gama rays and stable massless particles called 'neutrnios'.

(Ency. Brit. 1967 ed. Vol. 2 p. 69c)

अर्थात्—जब ऐण्टि-मैटर (उलटे द्रव्य) का ऐटम, द्रव्य के ऐटम से टकरा जाये तो दोनों एक दूसरे को तुरन्त विनष्ट कर देते हैं। उससे 'मिसोन' और अन्य न-टिकाऊ (unstable) कण बन जाते हैं और सैकिण्ड के एक अंश में ही ये न-टिकाऊ कण स्वयमेव प्रकाशमान शक्ति (radiant energy) में जिसे गामा (४) किरण कहते हैं, बदल जाते हैं और टिकाऊ (stable) द्रव्य मान हीन कण जिसे न्यूट्रिनोस कहते हैं, बन जाते हैं।

परन्तु यह बात अधिक व्याख्या से भारतीय वैज्ञानिकों को ज्ञात थी। वे इसे ही विपरीत दिशा से वर्णन करते हैं।

सांख्य दर्शन में कहा है—

सत्वरजस्तमां साम्यावस्था प्रकृतिः प्रकृतेर्महान् महतोऽहंकारोऽहंकारात् पञ्च तन्मात्राण्युभयमिनिन्द्रियं तन्मात्रेभ्यः स्थूलभूतानि पुरुष इति पञ्चविंशतिर्गणः ॥

(सां० १-६१)

अर्थात्—जब सत्त्व, रजस् और तमस् साम्यावस्था में होते हैं तो उनकी संज्ञा प्रकृति होती है। प्रकृति से (साम्यावस्था भंग होने पर) महान् बनता है। महान् से अहंकार और अहंकार से तन्मात्रा और तन्मात्रा से दस इन्द्रियाँ और पाँच स्थूल भूत। इनके अतिरिक्त पच्चीसवाँ जीवात्मा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तीन अहंकार इलैक्ट्रोन, प्रोटोन और न्यूट्रोन हैं। इन पर ही (—) ऋण, (+) घन और (०) शून्य विद्युत का आवेशन (charge) होता है।

जब अहंकार के आवेशन किसी विपरीत आवेशन से टकराकर विलीन होते हैं तो प्रकृति जो आवेशन के बिना है, बन जाती है। यही वैज्ञानिकों ने पता किया है। वे यह भी पता पा गये हैं कि इलैक्ट्रोन घन (+) और ऋण (—) जब मिल जाते हैं तो साम्यावस्था उत्पन्न हो जाती है और उस अवस्था के उत्पन्न होने पर radiant energy जिसे वेद ने अग्नि और प्राण के नाम से स्मरण किया है, बन जाती है। यह रेडियेण्ट शक्ति ही है।

प्राण स्वधा में रचना कार्य आरम्भ करता है। जब रचना समाप्त हो पुनः स्वधा के रूप में आता है तो प्राण उसमें से चला जाता है।

परन्तु वेद ने तो कुछ और भी बताया है। वह यह कि अग्नि और प्राण के सहयोग से रचना होती है। यद्यपि दोनों शक्तियाँ परमात्मा की ही मानी जाती हैं। इस पर भी दोनों में अन्तर है। अन्तर उनके कार्य के विचार से है। छन्द के अर्थ रूप हैं अर्थात् रूपवान जगत् अग्नि से निर्माण होता है।

अग्नि पदार्थों में छन्द उत्पन्न करती है और प्राण उन पदार्थों में गति उत्पन्न करता है। अग्नि और प्राण समान रूप से कार्य करते हैं। वास्तव में दोनों एक ही हैं।

वेद में यह भी बताया गया है कि जब कामना से प्राण और स्वधा का संयोग हुआ तब स्वधा में परिवर्तन आरम्भ हुए और एक सौ देववर्ष तक यह परिवर्तन होते रहे। खगोल शास्त्रियों का कहना है कि १०० देववर्ष बराबर हैं ३६,००० सौर (मानवी) वर्ष के।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्वितीय परिच्छेद

: १ :

इस परिच्छेद में हम ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के १६४वें सूक्त का भाव बतायेंगे। इस सूक्त के पहले सात मन्त्रों को वर्तमान परिच्छेद में देंगे। इनका देवता, जैसाकि भूमिका में वर्णन किया गया है, विश्वे देवाः है। विश्व में देवता अर्थात् समस्त संसार में दिव्य गुण युक्त पदार्थों का वर्णन है।

यहाँ पदार्थ का अर्थ लिख देना उचित है। पदार्थ उसको कहा जाता है जिसका अर्थ युक्त नाम हो। अतः परमात्मा से लेकर इस जगत् में प्रत्येक वस्तु जिसका अर्थ युक्त नाम है, वह पदार्थ से सम्बोधित किया जाता है। यहाँ दिव्य पदार्थों का ही वर्णन है। दिव्य उनको कहते हैं जिनमें दिव्यता अर्थात् महानता है।

कहा गया है कि जगत् में तीन प्रकार के पदार्थों का दर्शन होता है। जगत् के विषय में यह कहा है कि यह एक विख्यात वस्तु है।

सर्वत्र प्रसिद्धोपदेशात्। (ब्र० सू० १-२-१)

अर्थात् –जो सर्वत्र, अभिप्राय यह कि सब स्थान पर प्रसिद्ध है। उसके वर्णन से पता चलता है कि इसमें तीन प्रकार के पदार्थ हैं।

एक वाम (सुन्दर) है और पलित (वृद्ध) होने वाला है।

(१५) अस्य वामस्य पलितस्य होतुस्तस्य भ्राता मध्यमो अस्त्यश्नः।
तृतीयो भ्राता घृतपृष्ठो अस्यात्रापश्यं विश्पतिं सप्तपुत्रम् ॥
(ऋ० १-१६४-१)

पदार्थ—

(अस्य) इसका। (वामस्य) सुन्दर का। (पलितस्य) वृद्धावस्था प्राप्त का। (होतुः) यज्ञ करने वाले को। (तस्य) उसके। (भ्राता) भाई समान।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दूसरा, इसके बीच में स्थित, यज्ञ करनेवाले का भाई समान है और भोग करनेवाला है। तीसरा जो भाई समान है, वह अत्यन्त तेजोमय और सबका पालन करनेवाला है। मैं देखता हूँ। अभिप्राय यह कि ये तीनों दिखायी देते हैं। पुत्र का अभिप्राय प्राणों से है।

एक प्राणी को ही पहले लिया है। प्राणियों में भी मनुष्य का ही वर्णन समझना चाहिए। वेदमन्त्र कहता है कि जब विश्व को देखना आरम्भ करते हैं तो सबसे पहले मनुष्य दिखायी देता है। कदाचित् यह इस कारण कि देखनेवाला भी मनुष्य ही है। वेद ज्ञान भी मनुष्य को ही मिला है। इस कारण उससे ही विश्वे देवाः (विश्व के देवताओं) का वर्णन आरम्भ किया गया है।

एक मनुष्य में क्या दिखाई देता है? सबसे पहले सुन्दर, परन्तु बुढ़ापे को प्राप्त होनेवाला शरीर है। मनुष्य का शरीर सिर से पांव तक अति सुन्दर बना है। परन्तु अपने चारों ओर देखने पर पता चलता है कि यह सुन्दर शरीर दिनानुदिन वृद्धावस्था को प्राप्त हो रहा है।

परन्तु इस शरीर में कुछ है जो बाल्यकाल से वृद्धावस्था तक इसमें रहता है। जब मनुष्य मृत्यु को प्राप्त होता है तब भी तो शरीर रहता है। उसकी रूपरेखा भी कभी वैसी ही बनी रहती है जैसी कि मरने से पहले थी, परन्तु जीवित शरीर और मृत शरीर में अन्तर रहता है। वेद कहता है कि जीवित अवस्था में इसके भीतर भी एक था। वह इस शरीर में स्थित था। मरने पर वह नहीं रहा।

उस भीतर स्थित के विषय में वेद ने कहा है कि वह यज्ञ करनेवाले का भाई समान है। यज्ञ करनेवाले से अभिप्राय है यज्ञ रूप में इस सृष्टि की रचना करनेवाला। वह वेद के कथनानुसार परमात्मा है।

ऋग्वेद में ही कहा है—

अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्।
होतारं रत्नधातमम्॥ (ऋ० १-१-१)

अर्थात्—अग्नि रूप परमात्मा बार-बार जगत् रचकर एक महान् यज्ञ कर रहा है।

(मध्यमा) बीच में स्थित। (अस्ति) है। (अश्नः) भोगशील।

(तृतीयः) तीसरा। (भ्राता) भाई समान। (घृतपृष्ठः) अत्यन्त तेजोमय। (अस्य) इसका। (अत्र) यहाँ। (अपश्चमं) देखता हूँ। (विश्वपतिम्) पालन करनेवाले को। (सप्त) सात। (पुत्रम) पुत्रों को। (ऋ० १-१६४-१)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भगवद् गीता में भी कहा है —

सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः ।
अनेन प्रसविष्यध्वमेष वोऽस्त्विष्टकामधुक् ॥

(भ० गी० ३-१०)

अर्थात्—प्रजापति ने कल्प के प्रारम्भ में यज्ञ के साथ प्रजाओं का सृजन कर कहा कि लोग इस यज्ञ द्वारा ही वृद्धि को प्राप्त हो और यह यज्ञ (वृद्धि) तुम्हें इच्छित कामनाओं का देनेवाला हो ।

यहाँ इतना समझ लेना चाहिए कि जिन ग्रन्थों का हम इस व्याख्या में उद्धरण दे रहे हैं, वे वेद कथन को सिद्ध करने के लिए नहीं हैं। हमारा आशय यह है कि वेद ईश्वरीय ज्ञान है । शास्त्रों में उसकी जिस प्रकार व्याख्या की है, हम उसकी उसी प्रकार व्याख्या इस स्थान पर कर रहे हैं ।

भगवद् गीता का प्रवक्ता अपने कथन को वेदादि शास्त्रों से ही स्वीकार करता है । कहा है—

ऋषिभिर्बहुधा गीतं छन्दोभिर्विविधः पृथक् ।
ब्रह्मसूत्रपदैश्चैव हेतुमद्भिर्विनिश्चितैः ॥ (भ० गी० १३-४)

ऋषियों द्वारा बहुत प्रकार से गाया (कहा) गया तथा पृथक्-पृथक् वेद मन्त्रों द्वारा विविध प्रकार से वर्णन किया गया और ब्रह्मसूत्र के पदों (वाक्यों) में युक्ति से निश्चय किया गया ही (गीता में कहा गया) है ।

अतः इस वेद-मन्त्र में यह बताया है कि शरीर तो बुढ़ापे को प्राप्त होने वाला है, परन्तु उसके भीतर एक यज्ञ करनेवाले का भाई समान स्थित है । यज्ञ करनेवाले का अभिप्राय हमने बताया है । उसका भाई समान से अभिप्राय जीवात्मा से है । वह भाई समान क्यों है ? यह इस कारण कि परमात्मा और जीवात्मा में चेतना अर्थात् ईक्षण करने में समानता है । ईक्षण करने का क्या अभिप्राय है ? कार्य का आरम्भ, सुव्यवस्था से चालू रखने और समाप्त करने का जिसे अधिकार हो, वह ईक्षण करनेवाला कहा जाता है ।

यहाँ शरीर के बीच स्थित का लक्षण यह भी बताया है कि यह भोग करता है, अर्थात् इस संसार के सुख-दुःख को अनुभव करता है ।

यज्ञ करनेवाले का भी वर्णन किया है । कहा है कि इस शरीर में स्थित का भाई शरीर में उपस्थित तीसरा तत्त्व अत्यन्त तेजोमय और सबका पालन करनेवाला है । तेजोमय का अभिप्राय है महान् सामर्थ्यवान । इसके तेज की महानता का वर्णन अगले मन्त्रों में आयेगा । इसे परमात्मा कहते हैं ।

प्राणी (मनुष्य) के शरीर में तीन पदार्थों का वर्णन किया है । एक तो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शरीर है जो बूढ़ा हो रहा है। दूसरा इसमें स्थित जीवात्मा है जो भोग करता है और तीसरे तत्त्व अर्थात् परमात्मा के भाई समान है। इस भाई का भाई (अर्थात् परमात्मा) भी शरीर में है।

इस मन्त्र को कार्य जगत् पर भी लगाया जा सकता है। कार्य जगत् में जड़ पदार्थ है। उसमें फंसे हुए जीवात्मा भी हैं और जगत् पर निरीक्षण करनेवाला परमात्मा भी है। श्वेताश्वतर उपनिषद् में इसका बहुत सुन्दर ढंग से इस प्रकार वर्णन किया है। वहाँ कहा है—

सर्वाजीवे सर्वसंस्थे बृहन्ते अस्मिन्हंसो भ्राम्यते ब्रह्मचक्रे।
पृथगात्मानं प्रेरितारं च मत्वा जुष्टस्ततस्तेनामृतत्वमेति ॥

(श्वे० १-६)

अर्थात्—महान् जगत् के चक्र में जीव स्थित है। भंवर में फँसे हुए हँस की भाँति यह जीवात्मा है। इस (ब्रह्म चक्र अर्थात् भँवर और उसमें फँसे जीवात्मा) में प्रेरणा देनेवाला एक पृथक आत्मा है। उस प्रेरक के सम्पर्क में जो जीवात्मा आता है, वह इस संसार रूपी भंवर से निकल जाता है।

वेद मन्त्र का यही भावार्थ है जो इस उपनिषद् में बताया गया है।

मन्त्र में कहा है कि हम उसे देखते हैं। किसको देखते हैं? उपनिषद् में कहे अनुसार ब्रह्म चक्र को अथवा प्राणी को?

सप्त युञ्जन्ति रथमेकचक्रमेको अश्वो वहति सप्तनामा।
त्रिनाभि चक्रमजरमनर्वं यत्रेमा विश्वा भुवनाधि तस्थुः ॥

(ऋ० १-१६४-२)

पूर्व के मन्त्र में कहा है कि इस कार्य जगत् का पालन करनेवाला एक अति तेजोमय है और उसके सात पुत्रों को हम देखते हैं। हमने बताया है कि पुत्र से अभिप्राय प्राण है। पिता के पुत्र उसके कार्य को करनेवाले होते हैं और

पदार्थ—

(सप्त) सात (युञ्जन्ति) जुत गये हैं। (रथ्म) रथ को। (एक चक्रम) एक चक्र को। (एकः अश्वः) एक अश्व अर्थात् घोड़े की भाँति खींचकर ले जानेवाला (वहति) चलता है। (सप्तनामा) सात नामवाले (को)।

(त्रिनाभिः) तीन नाभियाँ अर्थात् आश्रय दे रही हैं (चक्रम्) चक्र को। (अजरम्) अजर को। (अनर्वम्) शिथिल न होनेवाले को। (यत्र) जहाँ। (इमा) ये। (विश्वा) समस्त। (भुवना) भुवनों को। (आधि तस्थुः) स्थित होते हैं।

ऋ० १-१६४-२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसी प्रकार प्राण परमात्मा का कार्य करता है।

इस वेद मन्त्र में कहा है कि वे सात प्राण एक चक्र में जुते हुए हैं और वह टूटता नहीं दीख रहा और न ही वह शिथिल पड़ रहा प्रतीत होता है। चक्र को एक अश्व चला रहा है। चलानेवाला प्राण सात नाम वाला है। चक्र की तीन नाभियाँ अर्थात् आश्रय स्थान हैं।

इससे पूर्व के मन्त्र में यह कहा था कि मनुष्य शरीर में देह, देही और परमात्मा हैं। परमात्मा के सात पुत्र अर्थात् प्राण हैं। इस मन्त्र में यह बताया है कि वे सात प्राण जगत् में भी कार्य कर रहे हैं। जगत् में एक अश्व है जो समस्त भुवनों अर्थात् नक्षत्रों को चलाता है। वह अश्व परमात्मा है और सात प्राण उसकी सामर्थ्य हैं।

अन्य स्थान पर वेद में कहा है—

प्राणाय नमो यस्य सर्वमिदं वशे। यो भूतः सर्वस्येश्वरो यस्मिन्त्सर्वं प्रतिष्ठितम्। (अथर्व० ११-४-१)

नमः सर्वस्मै त इदं नमः। (अथर्व० ११-४-८)

अर्थात् प्राण को नमस्कार करते हैं जिसके वश में सब यह (जगत्) है। वह स्वयम्भु है, सर्वेश्वर है जिसमें सब कछ (जगत्) प्रतिष्ठित है।

और—

इस जगत् के सब में वह है। उसे नमस्कार हो।

इस प्रकार वेद में प्राण का वर्णन है।

परमात्मा की दिव्य शक्ति प्राण समस्त जगत् को चलाती है। प्राणों की गणना सात क्यों की है? यह प्रश्न उपस्थित होता है। इसकी गणना वेद मन्त्र में तो नहीं की गयी, परन्तु यह इस प्रकार प्रतीत होती है। जगत् रचना में पाँच तो तन्मात्रायें हैं। ये तन्मात्रायें रचना कार्य में विशेष भाग लेती हैं। सांख्य दर्शन में लिखा है—'तन्मात्रेभ्यः स्थूल भूतानि' तन्मात्राओं के द्वारा स्थूल भूत बनते हैं, अर्थात् सूक्ष्म भूतों से स्थूल भूतों के बनने में तन्मात्राओं का योगदान है।

हम इसे वर्तमान विज्ञान की भाषा में इस प्रकार कह सकते हैं—(१) परमाणु के भीतर इलेक्ट्रोन को घुमानेवाली शक्ति (inter atomic energy); (२) रासायनिक शक्ति (chemical afinity); (३) अणुओं में अन्तर स्थित रखनेवाली शक्ति (intermolicular dynamics) अथवा संगठन शक्ति; इससे ठोस, तरल और वायवी (solids, liquids, gasses) अवस्थायें उत्पन्न होती हैं। (४) भू-आकर्षण (gravity)। (५) चुम्बकीय शक्ति (magnetism);

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन पाँच के अतिरिक्त—(६) प्रकाश और शब्द (light and sound) इत्यादि तरंगें उत्पन्न करनेवाली शक्ति है और (७) वायु है। यह वायु वही है जिसका उल्लेख बृहदारण्यक उपनिषद् (३-७) में इस प्रकार आता है—

वायुर्वै गौतम तत् सूत्रं वायुना वै गौतम सूत्रेणायं च लोकः परश्च लोकः सर्वाणि च भूतानि सन्दृब्धानि भवन्ति तस्माद् वै गौतम पुरुषं प्रतप्राहुर्व्यस्त्रँसिषतास्याङ्गानीति वायुना हि गौतम सूत्रेण सन्दृब्धानि भवन्तीत्येवमेवैतद्।

(बृ० उ० ३-७-२)

याज्ञवल्क्य कहता है—'हे गौतम ! वायु ही वह सूत्र है। गौतम ! वायु रूप सूत्र के द्वारा यह लोक, परलोक और समग्र भूत समुदाय गुँथे हुए हैं। हे गौतम ! इसी से मरे हुए पुरुष को ऐसा कहते हैं कि इसके अंग विस्तस्त होते हैं।

वैसे प्राण एक ही है। केवल उपाधि भेद से इसके भिन्न-भिन्न नाम हैं। यह परमात्मा की शक्ति (तेज) है। प्राणी में भी यही प्राण कार्य करता है और वहाँ भी कर्म भेद से इसके सात नाम हैं। पाँच ज्ञानेन्द्रियों में पाँच प्राण हैं। सब कर्मेन्द्रियों में छटा प्राण है और सातवाँ प्राण है जो नाड़ियों में काम करता है। इसे मुख्य प्राण कहते हैं।

पाँचों ज्ञानेन्द्रियों के प्राणों की पृथक-पृथक गणना की है, परन्तु पाँच कर्मेन्द्रियों में प्राणों को एक माना है। इसमें कारण इनमें कार्य भेद ही है। ज्ञानेन्द्रियों के कार्य एक के दूसरे में बदले नहीं जा सकते। कर्मेन्द्रियों के कार्य एक के दूसरे में बदले जा सकते हैं। इस कारण ज्ञानेन्द्रियों में पाँच प्रकार के प्राण हैं और कर्मेन्द्रियों में एक ही प्रकार का प्राण है। नाड़ियों में मुख्य प्राण पृथक है। जहाँ शरीर में छः प्राण थक कर आराम करते हैं वहाँ मुख्य प्राण जीवन पर्यन्त कार्य करता रहता है।

मन्त्र १-१६४-१ में 'सप्त पुत्र' से अभिप्राय प्राणी शरीर में कार्य करनेवाले सात प्राणों से है। मन्त्र १-१६५-२ में सात प्राण वे हैं, जो जगत् को धारण करते हैं और अश्वों की भाँति इसे चलाते हैं। 'सप्त युञ्जन्ति'। युञ्जन्ति के शाब्दिक अर्थ हैं 'युक्त होते हैं।'

चक्र की (जगत्) तीन नाभियाँ अर्थात् आश्रय स्थान कहे हैं। तीन आश्रय स्थान पहले मन्त्र में इस प्रकार वर्णन किये गये हैं। वे हैं प्रकृति, जीवात्मा और परमात्मा। इनका आधार लेकर ही यह प्राणी जगत् बना है। प्रकृति इस जगत् का उपादान कारण है। परमात्मा निमित्त कारण है और जीवात्मा इस जगत् का भोक्ता है।

यह जगत् क्या है ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इमं रथमधि ये सप्त तस्थुः सप्तचक्रं सप्त वहन्त्यश्वाः।
सप्त स्वसारो अभि सं नवन्ते यत्र गवां निहिता सप्त नाम ॥
(ऋ० १-१६४-३)

पूर्ण जगत चक्र के समान चलता है। भूमिका में हमने आकाश गंगा (galaxy) का चित्र दिया है।

इस चित्र को देखने पर पता चलता है कि यह एक बहुत बड़े चक्र के समान है जिसमें कई सूर्य हैं और असंख्य नक्षत्र हैं। इसका आकार देखकर यह पता चलता है कि यह सब चक्र एक केन्द्र के चारों ओर घूम भी रहा है। हमारा सौर-मण्डल, जिसमें हमारी पृथिवी एक नगण्य नक्षत्र है, इसी महान् आकाश गंगा का एक बहुत छोटा अंश मात्र है। ऐसे अन्य कई सौर-मण्डल इस गंगा में घूमते हुए कहे जाते हैं।

आकाश गंगा में अनुमान से १०,००,००,००,००० (दस अरब) नक्षत्र है, और यदि किसी ऐसे यान में यात्रा करें जो एक क्षण में १,८६,३०० मील की गति से चले तो आकाश गंगा के चक्र के एक कोने से दूसरे कोने तक जाने के लिए २,५०० वर्ष लगेंगे।

वेद मन्त्र में कहा है कि इस जगत् रूपी रथ में सात चक्र अधिष्ठित हैं, जो सात अश्वों अर्थात् सूर्यों से सात मार्गों पर ले जाये जा रहे हैं। उन सातों के सात भिन्न-भिन्न नाम हैं।

सात सूर्यों का उल्लेख महाभारत के प्रलय प्रकरण में भी मिलता है। वहाँ लिखा है कि प्रलय काल में—

ततो दिनकरैर्दीप्तैः सप्तभिर्मनुजाधिप।
पीयते सलिलं सर्वं समुद्रेषु सरित्सु च ॥
(महा भा० वनपर्व० १८८-६७)

अर्थात्—तदनन्तर प्रचण्ड तेजवाले सात सूर्य उदित होकर सरिताओं और

पदार्थ—

(इमम्) इस। (रथम्) रथ को। (अधितस्थुः) अधिष्ठित हैं (ये) जो। (सप्त) सात। (सप्त चक्रं) सात चक्रवाले को। (सप्त वहन्ति) सात चलाते हैं। (अश्वाः) घोड़े।

(सप्तः स्वसारः) सात अपने मार्गों पर। (अभि सम् नवन्ते) अपने सामने को चलते हैं। (यत्र) जहाँ। (गवां) चलनेवाले। (निहिता) निश्चित किये हुए। (सप्तनामः) सात नामों वाले। (ऋ० १-१६४-३)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समुद्रों का सारा जल सोख लेते हैं।

यह हम बता चुके हैं कि वेद के अतिरिक्त शास्त्रों और पुराणों से दिए जाने वाले उद्धरणों को देने से हमारा आशय यह बताने से है कि वेदार्थ हम वैसा ही कर रहे हैं जैसा कि अन्य प्राचीन विद्वानों ने समझा है।

वेद मंत्र में कहा है—'स्वसारो अभि सं नवन्ते' स्वयं सरते हुए अर्थात् चलते हुए आगे को जाते हैं। 'सं नवन्ते' के अर्थ सायण इस प्रकार करता है—'अभिमुख्येन संगच्छन्ति' अर्थात् सामने को आते हैं।

प्रश्न उपस्थित होता है—तो क्या वह चक्राकार मार्ग पर नहीं चल रहे ? वास्तव में उनका चक्र इतना बड़ा है कि प्रत्यक्ष रूप में वह सामने को ही चल रहे प्रतीत होते हैं। वैसे खगोल में कोई भी वस्तु ऐसी नहीं जो सीधी रेखा में चलती हो।

मन्त्र में यह भी लिखा है कि समस्त भवन तीन नाभियों पर स्थित है। जब यह है कि सात चक्र अर्थात् नक्षत्र मण्डल हैं और उनमें सात अश्व हैं, अर्थात् उन नक्षत्रों को चलानेवाले हैं, तो तीन आधारों का अर्थ जगत् में सत्त्व, रजस् और तमस् है।

अतः मन्त्रार्थ इस प्रकार है : रथ अर्थात् जगत् में सात चक्र (सौर-मण्डल) हैं और उन चक्रों को चलानेवाले सात अश्व (सूर्य) हैं। वे अपने-अपने मार्ग पर चल रहे हैं।

इस प्रकार खगोल का संक्षिप्त चित्र खींच दिया गया है। वह यह कि विश्व असीम है। इसके एक छोटे से अंश में इस जगत् का निर्माण हुआ है। जगत् चक्र की भाँति चल रहा है। यदि इसे रथ समझें तो इसके सात चक्र हैं। प्रत्येक चक्र को नक्षत्र-मण्डल माना गया है जिसमें एक-एक सूर्य ऐसा ही है जैसा कि हमारे सौर-मण्डल में है।

पूर्ण जगत् का आधार तीन तत्त्व हैं—सत्त्व, रजस् और तमस्। अर्थात् जगत् में तीन तत्त्व हैं। उनके संयुक्त होने के विषय में कुछ नहीं बताया गया। इस बताने से पूर्व पृथिवी पर प्राणी-सृष्टि की ओर संकेत कर दिया गया है।

आगे अब यह पूछा गया है कि जिस समय पृथिवी पर प्रथम शरीर रचा गया तो किसने देखा था ? कैसे जीवात्मा रक्त, माँस, अस्थि से और प्राणयुक्त शरीर से संयुक्त हुआ था ? इस पृथिवी पर अस्थि-रहित जीवात्मा कैसे अस्थिवाले शरीर में आया था ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को ददर्श प्रथमं जायमानमस्थन्वन्तं यदनस्था विभर्ति ।
भूम्या असुरसृगात्मा क्व स्वित् को विद्वांसमुप गात् प्रष्टुमेतत् ।।
(ऋ० १-१६४-४)

यहाँ अस्थिवाले शरीर का अभिप्राय प्राणी के शरीर से है। अस्थिवाला तो संकेतमात्र कहा गया प्रतीत होता है। क्योंकि प्राण बिना अस्थिवाले शरीर के भी होते हैं।

आदिकाल से वैज्ञानिकों के सामने यह प्रश्न बना हुआ है और बना रहेगा कि प्रथम प्राणी-सृष्टि कैसे हुई ? वेद कहता है कि जब प्रथम सृष्टि हुई थी तो उस समय कोई उपस्थित नहीं था। परिणामतः इस घटना का कोई साक्षी नहीं। अतः जैसा वेद कहता है वह मानना होगा। कारण यह है कि वेद अपने को ईश्वरीय ज्ञान घोषित करता है (अथर्व वेद १०-७-२०)। आगे चलकर वेदवाक्य द्वारा ही इस रचना का वर्णन किया जाएगा। यहाँ इस मन्त्र में यह कहने का, कि किसने प्रथम सृष्टि होती देखी है, भावार्थ यही है कि किसी भी मनुष्य ने नहीं देखी।

मनुष्य केवल वेद के कथन से सन्तुष्ट नहीं रहा। प्रत्यक्ष प्रमाण के अभाव में अनुमान-प्रमाण से सहायता भी ली गयी है। दर्शन-शास्त्रों में इस पर युक्ति की गयी है।

आजकल के वैज्ञानिकों ने भी इस प्रश्न पर बुद्धि लड़ाई है और उन्होंने विकासवाद (evolution theory) का अनुमान लगाया है। भारतीय दार्शनिकों और वैज्ञानिकों ने भी अनुमान लगाया है। भारतीय विद्वान् विकासवाद को ठीक नहीं समझते। उनका अनुमान वही है जो वेद में वर्णित है।[1]

पदार्थ—

(कः) कौन। (ददर्श) देखता है। (प्रथमम्) आरम्भ में। (जायमानम्) उत्पन्न होते हुए। (अस्थन्वन्तम्) अस्थियुक्त शरीरवाले को। (यत् अनस्था) जो अस्थियों से रहित। (विभर्ति) धारणा करता है।

(भूम्या) भूमिका। (असुः) प्राण। (असृक) रक्त। (आत्मा) जीवात्मा। (क्व) कौन। (स्वित्) स्थित है। (कः) कौन। (विद्वांसम) विद्वान् के। (उपगात्) समीप आयें। (प्रष्टुम) पूछने को। (एतत्) यह।

(ऋ० १-१६४-४)

---

१. भारतीय विद्वान किस प्रकार अनुमान लगाते हैं, इसका वर्णन 'विज्ञान और विज्ञान' पुस्तक के पृष्ठ १०९-१२९ में किया गया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतीय विद्वान इस प्रश्न को मनुष्य के ज्ञान का मूल प्रश्न मानते हैं और 'ब्रह्म सूत्र' का यही मुख्य विषय है। मनुष्य क्या है, क्यों है और कैसे हुआ है? उपनिषदों का भी मूलरूप में यही विषय है—

आदि सृष्टि के उपरान्त प्राणी की सृष्टि माता-पिता के संयोग से हो रही है और मन्त्र में यह प्रकट किया गया है कि उस समय माता-पिता के बिना सृष्टि हुई थी। इसी प्रकार एक अन्य प्रश्न पूछा गया है।

पाकः पृच्छामि मनसाविजानन् देवानामेना निहिता पदानि।
वत्से बष्कयेऽधि सप्त तन्तून् वि तत्निरे कवय ओतवा उ।
(ऋ० १-१६४-५)

यह जगत् और उसको चलानेवाले सात प्राण किसने बनाये हैं? दोनों ही मूल प्रश्न हैं और इन प्रश्नों का उत्तर ही ज्ञान-विज्ञान है। पूर्ण समस्या इन दो प्रश्नों में ही प्रकट होती है। एक प्रश्न है कि यह जगत् और प्राण किसने बनाये हैं? दूसरा प्रश्न है कि पृथिवी पर प्राणी सृष्टि कैसे हुई? जीवात्मा प्रकृति अर्थात् शरीर से कैसे, कब और किस प्रक्रिया से सम्बद्ध हुआ?

इन दोनों प्रश्नों का उत्तर अध्यात्म कहलाता है। भगवद् गीता में कहा है:

अक्षरं ब्रह्म परमं स्वभावोऽध्यात्ममुच्यते।
भूतभावोद्भवकरो विसर्गः कर्मसंज्ञितः॥ [भ० गी० ८-३]

अर्थात्—ब्रह्म अक्षर को कहते हैं। इसके परम स्वभाव को अध्यात्म कहा जाता है। प्राणियों और सृष्टि की रचना को (ब्रह्म का) कर्म माना गया है।

ऋग्वेद में तीन पदार्थ अक्षर माने गये हैं। मूल रूप में प्रकृति, जीवात्माएँ और परमात्मा। इसी की ओर मन्त्र (ऋ० १-१६४-१) में संकेत किया गया है। इस विषय में आगे चलकर पुनः वर्णन किया है। यदि अक्षर ब्रह्म है तो ये तीनों ब्रह्म कहे जाने चाहिएँ। ऐसा श्वेताश्वतर उपनिषद् का कहना है।

पदार्थ—

(पाकः) मन बुद्धि से शिक्षित हो। (पृच्छामि) पूछता हूँ। (मनसा) मन से अर्थात् विचार करके। (अविजानन्) न जानता हुआ। (देवानाम्) देवताओं के। (ऐना) इन। (निहिता) नियत किया हुआ। (पदानि) पदों अर्थात् कार्यों को।

(वत्से) बसे हुओं में अर्थात् सन्तान में। (बष्कये) सत्य स्वरूप। (अधि) ऊपर स्थित। (सप्त तन्तून्) सात तन्तुओं को। (वि तत्निरे) विशेष ताने हुए हैं। (क्वय) क्रान्तदर्शी विद्वान। (ओतवा उ) जगत् के बनाने के लिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उद्गीतमेतत्परम् तु ब्रह्म तस्मिंस्त्रयं सुप्रतिष्ठाक्षरं च ।
अत्रान्तरं ब्रह्मविदो विदित्वा लीना ब्रह्मणि तत्परा योनिमुक्ताः ।।
(श्वे० १-७)

अर्थात्—ऊपर कहे गये को परम ब्रह्म कहते हैं । एक ब्रह्म चक्र है । उसमें जीव हंस के समान भंवर में फंसा हुआ है और परमात्मा उस जीव को तथा ब्रह्म चक्र को प्रेरणा देता है ।

उपनिषद् के इस मन्त्र में यह कहा है कि उद्गीत अर्थात् ऊपर जो कहा गया है, वह परम ब्रह्म है । इस परम ब्रह्म में तीन अक्षर स्थित हैं । अक्षर का अर्थ अविनाशी है । जो अविनाशी है, वह अनादि भी होता है । यह न्याय का सिद्धान्त है । अतः परम ब्रह्म में तीन अक्षर स्थित हैं ।

और इन तीनों अक्षरों के लिये इसी उपनिषद् में आगे कहा है—

संयुक्तमेतत्क्षरमक्षरं च व्यक्ताव्यक्तं भरते विश्वमीशः ।
अनीशश्चात्मा बध्यते भोक्तृभावाज् ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशैः ।।
(श्वे०—१-८)

अर्थात्—क्षर और अक्षर अथवा अव्यक्त संसार का भरण-पोषण अर्थात् इन सब का बनानेवाला ईश्वर है । इसमें शक्तिहीन जीवात्मा संसार के भोग की भावना में बंधा हुआ है । जो परमात्मा का ज्ञान प्राप्त कर लेता है, वह सब बन्धनों से मुक्त हो जाता है ।

ज्ञाज्ञौ द्वावजावीशनीशावजा ह्येका भोक्तृभोग्यार्थयुक्ता ।
अनन्तश्चात्मा विश्वरूपो ह्यकर्ता त्रयं यदा विन्दते ब्रह्ममेतत् ।।
(श्वे० १-९)

अर्थात्—ज्ञानवान और अज्ञानी दो अजन्मा हैं जिनमें से एक सामर्थ्यवान है और दूसरा सामर्थ्यहीन है । एक तीसरा अजन्मा है जो भोग करनेवाले की भोग सामग्री प्रस्तुत करता है । परमात्मा विश्व को रूप प्रदान करता है, परन्तु वह स्वयं भोग नहीं करता । इन तीनों अजन्मा एवं अनादि पदार्थों को ब्रह्म जानो ।

वेद मन्त्र ऋ० १-१६-४-५ में कहा है कि परिपक्व मन और बुद्धि से विचार कर मैं ज्ञान और विज्ञान के ज्ञाता से जाकर यह जानना चाहता हूँ कि ये प्राण कैसे और कहाँ से आये हैं जिससे संसार चल रहा है ?

प्रश्न में यह उत्तर स्वतः कहा गया प्रतीत होता है कि वह परमात्मा है । भगवद् गीता और श्वेताश्वतर उपनिषद् के उद्धरणों से यही प्रकट होता है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि हमने जो वेद मन्त्र में प्रश्न का उत्तर समझा है, वही इन ग्रन्थों के प्रवक्ताओं ने समझा है।

इसी विषय पर और भी कहा है—

अचिकित्वाञ्चिकितुषश्चिदत्र कवीन् पृच्छामि विद्मने न विद्वान्।
वि यस्तस्तम्भ षडिमा रजांस्यजस्य रूपे किमपि स्विदेकम्॥
(ऋ०—१-१६४-६)

ज्ञानवान और अज्ञानी दोनों प्रकार के लोग गूढ़ तत्वों के जानने वाले के पास जाते हैं और कहते हैं कि मैं पूछता हूँ कि वह अनादि पुरुष कौन है जो इन छः ग्रहों को थामे हुए है और इनको रूप में रखे हुए है। वह एक कौन है ?

पूर्व मन्त्र के प्रश्नों में इसका संकेत किया गया है कि इस जगत् रूपी चक्र को कौन चला रहा है ! अब उसी प्रश्न को दोहराया गया है कि किसने अन्तरिक्ष में नक्षत्रों को थामा हुआ है ? यह प्रश्न एक जिज्ञासु के मन में उत्पन्न होना स्वाभाविक ही है।

वास्तव में इन प्रश्नों का उत्तर इसके अतिरिक्त अन्य कुछ हो ही नहीं सकता कि इस संसार में कोई अति महान् शक्तिशाली, ज्ञानवान् और व्यापक तत्त्व विद्यमान है जिसने यह निर्माण किया है और जो इसको थामे हुए है।

नक्षत्रों के आकार-विस्तार एवं भार का विचार कर उनके निरन्तर चलने पर शिथिल न होनेवाली गति को देखकर इनके संचालक के सर्वशक्तिमान् होने में सन्देह ही नहीं रह जाता। वेद यह भी कहता है कि जगत् चक्र निश्चित गति और दिशा में कार्य कर रहा है। अतः वह एक जो इसका संचालन कर रहा है, ज्ञानवान् भी है। कोई मूर्ख अथवा अल्प बुद्धि नहीं हो

पदार्थ—

(अचिकित्वान्) ज्ञान रहित। (चिकितुषः) ज्ञान युक्त। (चित्) भी। (अत्र) यहाँ। (कवीन्) गूढ़ तत्वों को जानने वाले से। (पृच्छामि) पूछता हूँ। (विद्मने) विशेष जानने के लिये। (न) इस प्रकार। (विद्वान्) विद्वान।

(वि) विशेष रूप में। (यः) जो। (तस्तम्भ) थामे हुए हैं। (षट्) छः। (इमा) यहाँ। (रजांसि) नक्षत्रों को। (अजस्य) अजन्मा के। (रूपे) रूप में। (किम् अपि) कोई भी। (स्वित्) है। (एकम्) एक।

(ऋ० १-१६४-६)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सकता। उक्त प्रश्नों के ये उत्तर ही आस्तिकता अर्थात् परमात्मा के अस्तित्व का निश्चय करते हैं।

वैदिक परम्परा के विद्वान् बार-बार यह कहते हैं कि किसी एक ऐसे तत्त्व के अस्तित्व को स्वीकार किये बिना संसार में देखी जानेवाली वस्तुओं के होने और उनके निश्चित कर्म में लगे रहने को बताया ही नहीं जा सकता।

इन्हीं वेद मन्त्रों का संकेत पाकर ब्रह्मसूत्र कहनेवाला यह प्रबल युक्ति प्रस्तुत करता है—

'जन्माद्यस्य यतः'

परमात्मा की सत्ता को न मानने वाले इसे 'नेचर' कह कर टालते हैं। यह तो प्रश्न को स्वीकार कर उसके स्वाभाविक परिणामों से आँखें मूंदने के तुल्य है। यदि यह मानें कि यह 'नेचर' (प्रकृति) ही है तब प्रश्न उपस्थित होता है कि क्या वह 'नेचर' चेतन है ?

मनुष्य चेतन है। इसमें कौन-सा गुण है जिससे यह चेतन कहा जाता है ? यह इसको किसी अचेतन की तुलना में रखकर पता चल सकता है। किसी मनुष्य के समक्ष मिठाई रखी है, परन्तु वह उसे नहीं खाता। खाना न खाना मनुष्य के स्वयं निश्चय करने की बात है। परन्तु एक मेज़ है। उस पर दो मन का बोझा रख दिया जाता है। मेज़ न तो यह प्रकट कर सकती है कि यह बोझा उसको कष्ट प्रद है और न ही इससे उसे सुख होता है। इसके अतिरिक्त कष्ट होने पर वह इसको अस्वीकार भी नहीं कर सकती। दोनों में, मनुष्य को चेतन कहा है और मेज़ को अचेतन। कार्य करने की सामर्थ्य और उस कार्य का करना, न करना, कब करना और कब न करना तथा किस दशा में करना और किस दशा में न करना, ये चेतन के गुण हैं और जो इनको नहीं कर सकता, वह अचेतन है। कार्य करने की सामर्थ्य और उसका समय, दिशा और करने का ढंग ये सब चेतन के लक्षण हैं।

जैसे मनुष्य में इन गुणों के होने से वह चेतन कहा जाता है, ऐसे ही सृष्टि रचना में इन तीनों गुणों (decision discretion and direction) को देखकर उसके रचयिता की युक्ति की गई है। वह चेतन है और ज्ञानवान है। इसका नाम कुछ भी रखो, वह है। किसी तत्त्वदर्शी से जाकर पता करो तो वह यही कहेगा कि—

एको हि रुद्रो न द्वितीयाय तस्थुर्य इमांल्लोकानीशत ईशनीभिः।
प्रत्यङ् जनांस्तिष्ठति संचुकोचान्तकाले संसृज्य विश्वा भुवनानि गोपाः॥

(श्वे—३-२)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थात्—वह शक्तिशाली एक ही है। किसी दूसरे को उसके स्थान पर स्थित नहीं करना चाहिए। वही इन लोगों का सृजन और शासन करता है। अन्त काल में वही इसे समेट लेता है। जब इस सृष्टि को देखते हैं तो वह ही समक्ष दिखाई देता है। अर्थात् यह सृष्टि ही परमात्मा के अस्तित्व का सबसे बड़ा प्रमाण है।

वेद मन्त्र में भी नक्षत्रादि की ओर संकेत कर परमात्मा के होने और उसकी सामर्थ्य और ज्ञान का अनुमान लगाया गया है।

परमात्मा के विषय में ही और स्पष्टीकरण किया गया है :

इह ब्रवीतु य ईमङ्ग वेदास्य वामस्य निहितं पदं वेः।
शीर्ष्णः क्षीरं दुह्रते गावो अस्य वव्रिं वसाना उदकं पदापुः ॥
(ऋ० १-१६४-७)

तत्त्वदर्शी अपने पास आये जिज्ञासु से कहता है·····हे प्रिय ! जो इस सुन्दर जगत् को अच्छी प्रकार से जानता है, वह इसमें ऐसे स्थित हो जाता है जैसे कि कोई पांवों पर स्थित है। इसका अभिप्राय यह है कि इस जगत् को भली प्रकार जाननेवाला परमात्मा को पूर्ण रूप में जान लेता है। जैसे मनुष्य के शिर से निकलने वाली शिरायें पूर्ण शरीर को नियन्त्रण में रखती हैं, वैसे ही परमात्मा पूर्ण जगत् को नियन्त्रण में रखता है। जैसे वृक्ष भूमि में स्थित अपनी जड़ों से जल पीता हुआ उसे पूरे शरीर में पहुँचाता है वैसे ही परमात्मा सम्पूर्ण जगत् का पालन करता रहता है।

इसका अभिप्राय यह है कि वह एक, जिसके विषय में कहा है, वह सर्व-व्यापक भी है, सब स्थान पर व्यापक होने से जगत् के एक-एक कण को वह जानता है, उसका पालन पोषण करता है और उस पर नियन्त्रण करता है।

जहाँ पूर्व के मन्त्र में कहा गया था कि वह सामर्थ्यवान है और बड़े-बड़े

पदार्थः—(इह) यहाँ। (ब्रवीतु) कहाँ। (यः) जो। (ईम) सब ओर से। (अङ्ग) हे प्रिय। (वेद) जानता है। (अस्य) इसका। (वामस्य) सुन्दर का। (निहितम्) स्थित दिये हुए। (पदं) पांवों से। (वेः) जाता है।

(शीर्ष्णः) शिर स्थान अर्थात् उत्कृष्ट। (क्षीरं) दूध के। (दुह्रते) सम्पन्न करती है। (गावः) इन्द्रियाँ अथवा शिरायें। (अस्य) इसका। (वव्रिम्) स्वीकार करने योग्य। (वसाना) धारण करता है। (उदकं) जल को। (पदः) पांवों से। (अपुः) पीता है।

(ऋ० १-१६४-७)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नक्षत्रादि को थामे हुए है, वहाँ इस मन्त्र में कहा है कि वह सर्वव्यापक भी है। यह नहीं कि वह जगत् के किसी एक कोने में बैठा हुआ अपने दूतों से जगत् पर नियन्त्रण रखता है। वेद का कहना है कि वह प्रकृति के एक-एक परमाणु से सम्पर्क रखने के कारण उस पर नियन्त्रण रखता है।

अभी तक इस सूक्त (ऋ० १-१६४) के प्रथम सात मन्त्रों का भावार्थ लिखा गया है। इसमें जगत् को और उसमें मानव को समक्ष रखकर समझाने का यत्न किया गया है। यह कहा है कि अन्तरिक्ष में जो जगमगाते तारागण हैं, उनको देखने से पता चलता है कि एक तो सुन्दर दृश्यमान जगत् है, परन्तु यह जीर्णता को प्राप्त हो रहा है। यहाँ कार्य जगत् में हो रहे परिवर्तनों की ओर संकेत है। इस जगत् की तुलना का पदार्थ मनुष्य शरीर है। यह भी कार्य जगत् की भाँति जीर्णता को प्राप्त होता जाता है। अभिप्राय यह है कि इसमें भी परिवर्तन हो रहे हैं।

तदनन्तर बताया गया है कि शरीर में एक चेतन तत्त्व है। वह कार्य-जगत् का शरीर द्वारा भोग प्राप्त करता है। इसे एक तीसरे पदार्थ का भाई कहा है। दोनों चेतन होने के नाते भाई हैं। वैसे तीसरा, जिसे दूसरे का भाई माना है, वह अति प्रकाशमय और सबका पालन करनेवाला है।

इस कार्य जगत् की एक रथ से तुलना की गई है जिसके चक्र को चलाने वाले सात हैं। हमने इस सात की व्याख्या की है। सात प्राण हैं जो इस कार्य जगत् को बनाते हैं। इनके नाम हैं—पाँच तन्मात्राएं, छटा अग्नि (प्रकाश) और सातवाँ वायु। प्राण एक ही है, परन्तु कार्य के अनुसार इसके सात नाम बताये हैं।

ये प्राण परमात्मा के पुत्र हैं अर्थात् परमात्मा से ही इनका आविर्भाव होता है। ये अपने पिता परमात्मा का ही कार्य करते हैं।

जगत् चक्र न तो क्षरित होता है और न ही यह थकता है। यह निरन्तर चल रहा है। इसकी तीन नाभियाँ हैं। ये हैं तीन मूल तत्त्व जिनका पूर्व में उल्लेख किया गया है। दो तो भाई हैं जीवात्मा और परमात्मा और तीसरी, जगत् चक्र की नाभि, है मूल प्रकृति। इन तीनों के आश्रय जगत् चलता है।

इसके उपरान्त जगत् रूपी रथ में सात चक्र बताये हैं और उनको चलाने-वाले सात अश्व हैं। यह कथन भारतीय ज्योतिष शास्त्र के सम्बन्ध में है। सात सूर्य हैं और उनके सात चक्र अर्थात् मण्डल हैं। सातों मण्डल अपने-अपने मार्ग पर चल रहे हैं। यह सौर-मण्डल जिसका सम्बन्ध हमारी पृथिवी से है, उनमें एक है। यह भी समूचा अपने मार्ग पर चल रहा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसके उपरान्त पृथिवी पर प्राणी सृष्टि का वर्णन किया है। वेद में कहा है कि जब प्राणी की रचना हुई थी और जीवात्मा शरीर में आया था तब इस पृथिवी पर कोई देखनेवाला नहीं था। इस कारण किसी तत्त्वदर्शी (विद्वान्) से पता करो कि यह कैसे हुआ कि निर्जीव तत्त्वों का संयोग प्रथम प्राणी रचना में शरीर, रक्त, माँस, मज्जा के साथ हुआ ? जिज्ञासु को विद्वान् कहता है कि अपने को देखकर विचार करो तो पता चल जायेगा कि यह सब कैसे हो गया है ! इस सबके करनेवाला कोई महान् क्रान्तदर्शी, सर्वशक्तिमान्, सर्वज्ञ और सत्ता का स्वामी समझ आने लगेगा।

: २ :

प्राणी सृष्टि माता-पिता से होती है। यह नियम है। अतः आदि में भी इस नियम का ही पालन हुआ होगा। ऐसा अनुमान किया जा सकता है। परन्तु वे माता-पिता प्राणी माता-पिता नहीं हो सकते। कारण यह कि सृष्टि के प्रारम्भ में वे थे नहीं। इस कारण माता-पिता के स्थानापन्न वैसा ही कार्य करनेवाले प्रकट हुए। वेद में कहा है—

माता पितरमृत आ बभाज धीत्यग्रे मनसा सं हि जग्मे।
सा बीभत्सुर्गर्भरसा निविद्धा नमस्वन्त इदुपवाकमीयुः ॥
(ऋ० १-१६४-८)

माता, पिता को अनादि सत्य यज्ञ रूप में चारों ओर से प्राप्त करती है। आदि काल में जब पृथिवी पर अभी कोई प्राणी नहीं था, तब दो ही माता तथा पिता तुल्य थे। पृथिवी माता के रूप में और पिता सूर्य के रूप में। संयोग की इच्छावाली पृथिवी ने सूर्य को चारों ओर से प्राप्त किया और गर्भ से निबद्ध

पदार्थ—

(माता) माता जन्म देनेवाली। (पितरम्) पिता को। (ऋत) अनादि सत्य यज्ञ के रूप में। (आ बभाज) चारों ओर से प्राप्त करती है। (धीति) धारण करती है। (अग्रे) आदि काल में। (मनसा) चित्त शक्ति से। (सं हि) निश्चय से समान रूप में। (जग्मे) संयोग होता है। (संयोग करती है)।

(सा) वह। (बीभत्सुः) संयोग की इच्छा से। (गर्भरसा) गर्भ में धारण योग्य। (निविद्धा) बंधी हुई। (नमस्वन्त) नमस्कार अर्थात् प्रशंसा के योग्य अथवा ज्ञानवान। (इत्) इस। (उपवाकम्) उप वाणी अर्थात् उच्चारण मात्र। (इयुः) प्राप्त होते हैं। (ऋ० १-१६४-८)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो गयी। इस संयोग से ज्ञानवान् मनुष्य उत्पन्न हुए, जो बोलते थे अर्थात् शब्द उच्चारण करते थे।

यह पहले (ऋ० १-१६४-५, ६ में) प्रश्न के रूप में कहा गया है कि प्रथम प्राणी-सृष्टि के समय इस संसार में इस कृत को कोई देखनेवाला नहीं था। उसी प्रश्न के उत्तर में यह कहा है कि एक परमात्मा था जो जानता है। वही रचना करनेवाला है और सृष्टि का पालन-पोषण करनेवाला है।

अब इस मन्त्र में बताया है कि कैसे रचना हुई? वेद में कहा है कि जैसे आजकल रचना होती है वैसे ही आरम्भ में भी हुई थी। अन्तर यह था कि पृथिवी माता थी और सूर्य पिता था। इन भौतिक पदार्थों से चेतन का कार्य कैसे हुआ? उत्तर है कि वैसे ही जैसे प्राणी के शरीरों से आज सृष्टि होती है। शरीर में चेतन जीवात्मा कार्य करता है। पृथिवी और सूर्य में चेतन परमात्मा प्रेरणा देता था। वास्तव में जीवात्मा भी परमात्मा की सामर्थ्य से ही सांसारिक कार्य करता है। शास्त्र में कहा है—

इतरपरामर्शात् स इति चेन्नासम्भवात्॥ (ब्र० सू० १-३-१८)

इतर (जीवात्मा) के परामर्श से परमात्मा की शक्ति का प्रयोग होता है। ऐसा सम्भव है।

अर्थात्—प्राणी में जो सन्तान उत्पत्ति होती है, वह न तो शरीर के द्वारा होती है और न ही जीवात्मा की सामर्थ्य से। सामर्थ्य परमात्मा की होती है। अन्य तो साधन मात्र हैं।

इसी प्रकार सृष्टि के आरम्भ में आदि प्राणी-रचना भी परमात्मा के सामर्थ्य से हुई थी। पृथिवी ने माँ का कार्य किया और सूर्य ने पिता का।

यही बात हमने इसी पुस्तक के आरम्भ में कही थी और यही ऋग्वेद के मन्त्रों (ऋ० १०-१२९-४,५) में वर्णित है। वहाँ हमने लिखा था कि एक कामना जो बीज रूप में पृथिवी पर व्याप्त हुई और उससे प्रथम सृष्टि रचना हुई। यह संयोग दूर-दूर तक हुआ, अर्थात् एक विस्तृत स्थान पर हुआ।

हमने बताया है कि प्राणी के माता-पिता के शरीर भी जड़ हैं, परन्तु वे चेतन जीवात्मा की प्रेरणा से कार्य करते हैं। इसी प्रकार सूर्य और पृथिवी भी जड़ थे, परन्तु उन्होंने भी परमात्मा की प्रेरणा शक्ति से कार्य किया।

प्रश्न हो सकता है कि अब ऐसा क्यों नहीं होता? उत्तर सरल है। प्रत्येक प्राणी के नर और मादा अपनी एक विशेष आयु में ही सन्तानोत्पत्ति कर सकते हैं। इसी प्रकार पृथिवी और सूर्य भी एक विशेष काल में ही यह कार्य कर सके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं। यही वेद का आशय है।[1]

इस रचना के उपरान्त गर्भ पालन के विषय में कहा है—

युक्ता मातासीद् धुरि दक्षिणाया अतिष्ठद् गर्भो वृजनीष्वन्तः।
अमीमेद् वत्सो अनु गामपश्यद् विश्वरूप्यं त्रिषु योजनेषु ॥
(ऋ० १-१६४-९)

पूर्व के मन्त्र में सूर्य और पृथिवी के संयोग से प्राणी की उत्पत्ति लिखी गयी है। ऋग्वेद (१०-१२९-४,५) में यह कहा है कि परमात्मा से किरणों के रूप में तेज से सृष्टि रचना हुई। यहाँ सूर्य किरणों के रूप में पृथिवी से संयोग होने पर प्राणी रचना हुई कही गयी है। यह कहा है कि पृथिवी के ध्रुव के दक्षिण में किसी सुरक्षित स्थान पर किरणों से तेज रूप वीर्य की वर्षा हुई और पृथिवी के गर्भ ठहर गया। जीवात्मा ने गर्भ ठहरा हुआ देखा तो वह पीछे उसमें आ गया और तीन प्रकार की सृष्टि हुई—जेरज, अण्डज और स्वेदज। चौथी प्रकार की सृष्टि अभिप्राय स्थावर (वनस्पतियाँ) भिन्न प्रकार से हुई। साथ ही वह प्राणी सृष्टि से पहले हुई।

इस वेद मन्त्र में से ही पुराणादि ग्रन्थों में मेरु पर्वत पर ब्रह्मा की कमल पर उत्पत्ति की कल्पना की गयी है। मेरु उत्तरी ध्रुव को कहते हैं। यहाँ कहा है कि ध्रुव के दक्षिण में किसी सुरक्षित स्थान पर।

इसी प्रसंग में महाभारत में कहा है—

मानसस्येह या मूर्तिर्ब्रह्मत्वं समुपागता।
तस्यासनविधानार्थं पृथिवी पद्ममुच्यते ॥

पदार्थ—

(युक्ता) जुड़ी हुई अर्थात् सम्बद्ध हुई। (माता) पृथिवी। (आसीत्) थी। (धुरि) धारणा करनेवाली धुरि में। (दक्षिणाया) दक्षिण में। (अतिष्ठत्) स्थित था। (गर्भः) गर्भ अर्थात् ग्रहण करने योग्य सन्तान। (वृजनीषु) वर्जनीय स्थान में अर्थात् सुरक्षित स्थान में। (अन्तः) भीतर।

(अमीमेत्) प्रक्षेप करता है। अर्थात् बरसाता है। (वत्सः) पुत्र को। (अनुगाम) पीछे जाता हुआ। (अपश्यत्) देखता है। (विश्वरूपम्) समस्त रूप को। (त्रिषु) तीन से। (योजनेषु) बन्धनों में। (ऋ० १-१६४-९)

---

१. (इस विषय की अधिक व्याख्या के लिये 'विज्ञान और विज्ञान' पृष्ठ-१०४ से १०८ पढ़िये।)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर्णिका तस्य पद्मस्य मेरुर्गगनमुच्छ्रितः ।
तस्य मध्ये स्थितो लोकान सृजते जगतः प्रभुः ।।

(महा भा० शान्ति० १८२-३७,३८)

अर्थात्—मानस देव का जो स्वरूप बताया है, वही ब्रह्म रूप में प्रकट हुआ । उसी के ठहरने के लिए उस पृथिवी को ही कमल कहा जाता है ।

उस कमल की कर्णिका (डण्ड) मेरु पर्वत है जो आकाश में बहुत ऊँचाई तक गया है। उसी पर्वत के मध्यम भाग में स्थित होकर परमात्मा ने सृष्टि की ।

भारतीय परम्परा कि सूर्य और पृथिवी के संयोग से प्राणी-सृष्टि हुई, वेद में वर्णित है ।

इस मन्त्र में यह भी स्पष्ट किया है कि जब जीवात्मा देखता है कि शरीर बन गया है तो वह पीछे उसमें आ जाता है । साथ ही सूर्य और पृथिवी के इस प्रकार के संयोग से तीन प्रकार के प्राणियों की सृष्टि हुई । वनस्पतियों की सृष्टि पृथक् है ।

तिस्रो मातृस्त्रीन् पितॄन् विभ्रदेक ऊर्ध्वस्तस्थौ नेमव ग्लापयन्ति ।
मन्त्रयन्ते दिवो अमुष्य पृष्ठे विश्वविदं वाचमविश्वमिन्वाम् ।।

(ऋ० १-१६४-१०)

प्राणी की तीन मातायें हैं अर्थात् उसको तीन अंश माता से प्राप्त होते हैं। यह भी कहा है कि उसके तीन पिता हैं । इसका भी अर्थ यही है कि उसको तीन अंश पिता की ओर से मिलते हैं ।

पूर्व मन्त्र में कहा है कि माता पृथिवी है और पिता सूर्य । अतः प्राणी के शरीर में तीन अंश माता (पृथिवी) की ओर से आते हैं और तीन अंश पिता (सूर्य) की ओर से । माता की ओर से । आनेवाले अंश हैं—पृथिवी, जल और वायु । (तीनों पंचभौतिक हैं ।) और सूर्य की ओर से आनेवाले अंश हैं—अग्नि

पदार्थ --

(तिस्रो) तीन । (मातृः) माताओं । (त्रीन्) तीन । (पितॄन्) पिताओं को । (विभ्रत्) धारणा करता हुआ । (एकः) एक । (ऊर्ध्वः) ऊपर । (तस्थौ) स्थित है । (न-ईम) अब नहीं । (अवग्लापयन्ति) विचलित होता है अर्थात् पृथक् होते हैं ।

(मन्त्रयन्ते) मन्त्र समझनेवाले । (दिवः) सूर्य के । (अमुष्य) दूर स्थित । (पृष्ठे) पीठ पर । (विश्वविद्म) समस्त को ज्ञात होता है। (वाचम्) वाणी को । (अविश्वमिन्वाम्) जो सब नहीं समझ सकते । (ऋ० १-६१४-१०)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और आकाश। ये दोनों भी पंचभौतिक ही हैं। पिता अर्थात् सूर्य की ओर से आनेवाला तीसरा अंश है प्राण।

अग्नि और प्राण में अन्तर है। अग्नि जो पिता के अंश से प्राणी के शरीर-निर्माण के लिए मिलती है, वह रासायनिक शक्ति है और प्राण अन्तःकरण और दसों इन्द्रियों में कार्य-शक्ति है। प्राण चेतना का प्रतीक है।

इस प्रकार प्राणी का शरीर छः अंशों का समूह है। इनमें से तीन माता (पृथिवी) की ओर से मिलते हैं और तीन पिता (सूर्य) की ओर से। ये छहों प्राणी के शरीर को धारण करते हैं। जब यह शरीर बन रहा होता है तब इसमें रहने के लिए जीवात्मा आ जाता है। जब आ जाता है तब (न अवग्लापयन्ति) सुगमता से पृथक् नहीं हो सकता।

जब शरीर में जीवात्मा आ जाता है तब जन्म होता है और जन्म से वाणी सबको प्राप्त होती है। मन्त्रों के साथ ही विचारक तो उस वाणी का अर्थ समझ सकते हैं और अन्य नहीं समझ सकते।

दूर स्थित का अर्थ स्थान के विचार से नहीं है, वरन् जीवात्मा से भिन्न का अर्थ है।

यहाँ इस मन्त्र में यह बात स्पष्ट की है कि प्राणी का शरीर पंच महाभूत और प्राण से बनता है। पंच महाभूतों में जल, वायु और पृथिवी तो माता का अंश भूमि से प्राप्त होते हैं और अग्नि तथा आकाश दो शेष महाभूत और प्राण पिता से प्राप्त होते हैं। दूसरी बात यह है कि जीवात्मा शरीर बनने के समय आता है। प्राणी बनने के साथ ही वाणी मिलती है। यह सबको प्राप्त होती है, परन्तु जो मन्त्रयन्तः हैं, वे ही इस वाणी का अर्थ समझते हैं। सब नहीं समझते।

वाणी तीनों प्रकार के प्राणियों को मिलती है।

: ३ :

सृष्टि रचना का प्रकरण समाप्त हुआ। इसमें अभी तक परमात्मा, प्रकृति, प्राण, जगत् में सूर्य और नक्षत्रों का वर्णन हुआ है। तदनन्तर प्राणी की उत्पत्ति में माता पृथिवी और पिता सूर्य का वर्णन हुआ है। इनके परस्पर संयोग से तीन प्रकार के प्राणियों की सृष्टि हुई। अब इस प्रकरण में काल का वर्णन है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्वादशारं नहि तज्जराय वर्वर्ति चक्रं परि द्यामृतस्य।
आ पुत्रा अग्ने मिथुनासो अत्र सप्त शतानि विंशतिश्च तस्थुः॥
(ऋ० १-१६४-११)

कालचक्र में सम्वत्सर एक इकाई है। इसमें बारह अरे अर्थात् महीने होते हैं और ७२० दिन-रात जोड़े हैं। अर्थात् ३६० दिन और ३६० रातें हैं। यह दिन और महीने चक्र की भाँति चलते रहते हैं। दिनों को पुत्र का नाम दिया है। यह चक्र अजर है, अर्थात् इसमें ह्रास नहीं होता। अनादि काल से चला आ रहा है।

जैसे दिन-रात के उपरान्त पुनः दिन-रात होते हैं, वैसे ही कल्प के उपरान्त कल्प होता है। कल्प में भी दिन और रात होते हैं। जगत्-रचना-काल को ब्रह्म दिन कहते हैं और प्रलय काल को ब्रह्म रात्रि। ये भी चक्र की भाँति बार-बार होते हैं।

इस काल-गणना के विषय में अगले मन्त्र में कहा है —

पञ्चपादं पितरं द्वादशाकृतिं दिव आहुः परे अर्धे पुरीषिणम्।
अथमे अन्य उपरे विचक्षणं सप्तचक्रे षळर आहुरर्पितम्॥
(ऋ० १-१६४-१२)

पदार्थ—

(द्वादशारम्) बारह अरों को। (न) नहीं। (ही) निश्चय से। (तत्) वह। (जराय) जीर्ण होने के लिये। (परि वर्वर्ति) निरन्तर चलता है। (चक्रम्) चक्र। (द्याम्) द्युलोक में। (ऋतस्य) अनादि सत्य का।

(आ) चारों ओर से। (पुत्रा) पुत्र। (अग्ने) हे अग्ने अर्थात् हे विद्वान्। (मिथुनासः) जोड़े। (अत्र) यहाँ। (सप्त शतानि) सात सौ। (विंशति) बीस। (च) और (तस्थुः) स्थित है। (ऋ० १-१६४-११)

पदार्थ —

(पञ्चपाद्म) पाँच पाद हैं। (पितरम्) पिता (पालन करनेवाले को)। (द्वादशाकृतिम्) बारह आकारवाले हैं। (दिव) सूर्य के। (आहुः) कहे जाते हैं। (परे) दूर में हैं। (अर्धे) आधे भाग में। (पुरीषिणम्) मिलावट दूर करनेवाले।

(अथ इमे) इसके अनन्तर में। (अन्य) दूसरे। (उपरे) ऊपर। (विचक्षणम्) विशेष रूप से देखनेवाले को। (सप्त) सात। (चक्रे) चक्र में। (षट्) छः। (अर) अरे। (आहुः) कहे जाते हैं। (अर्पितम्) अर्पित है, अर्थात् स्थापित है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काल के पाँच पाद हैं जो प्राणी मात्र का पालन करते हैं। वे मन्त्र में पितर कहे गये हैं। ये पाँच पाद हैं—(१) निमेष (२) काष्ठा, (३) कला (४) मुहुर्त्त (५) अहोरात्रि।

इनके काल का निश्चय काल-गणना-शास्त्र में इस प्रकार किया गया है—

१ निमेष = १.७७ सैकिण्ड.

१८ निमेष = १ काष्ठा = ३.१७९ ,,

३० काष्ठा = १ कला = ९६.०० ,,

३० कला = १ मुहुर्त्त = ४८.०० मिनट

३० मुहूर्त्त = १ अहोरात्रि = २४ घण्टे.

इस ३० मुहूर्त्त अर्थात् २४ घण्टों के दो आधे-आधे में भाग करता है सूर्य। आधे भाग में सिर पर होता है और दूसरे आधे भाग में दूर होता है। इस दिन-रात के आधे भाग की जो रात है उसे मिलावट दूर करनेवाली कहा है। यह इस कारण कि रात के समय प्राणी विश्राम करते हैं और थकावट दूर होती है।

ये ऊपर देखनेवाले हैं सात। वे भी चक्र में हैं। ये सप्ताह के सात दिन हैं। रविवार, सोमवार, मंगलवार, बुधवार, बृहस्पतिवार, शुक्रवार और शनिवार। यह सात दिन का चक्र है। इनके ऊपर छः ऋतुएँ हैं। उन्हें अरे कहा गया है। अरे चक्र में नाभि और चक्र की परिधि को बाँधनेवाले होते हैं। छः ऋतुएँ वर्ष के चक्र को सप्ताह के चक्रों से बाँधती हैं।

पूर्व मन्त्र (१-१६४-११) में संवत्सर के विभाग महीनों और दिनों में किये गये थे। इस मन्त्र में अधिक व्याख्या से कहा गया है। काल की इकाई से आरम्भ कर संवत्सर तक की गणना कर दी गयी है। इसमें महीनों के अतिरिक्त वर्ष को अन्य प्रकार से सप्ताह और ऋतुओं में बाँधा गया है।

यह काल-गणना पृथिवी पर संवत्सर की बतायी गयी है। जहाँ तक जगत् में काल का प्रश्न है, वह इसमें नहीं कहा गया।

: ४ :

पृथिवी पर काल के विषय में बताकर अब जगत् की कुछ अधिक व्याख्या की गयी है। कहा है कि जगत् चक्र में पाँच सहारे हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पञ्चारे चक्रे परिवर्तमाने तस्मिन्ना तस्थुर्भुवनानि विश्वा ।
तस्य नाक्षस्तप्यते भूरिभारः सनादेव न शीर्यते सनाभिः ।।
(ऋ० १-१६४-१३)

इन सहारों पर ही जगत् टिका है और चल रहा है, जगत् में बड़े-बड़े नक्षत्र चलाये जा रहे हैं। ऊपर लिखे एक मन्त्र में बताया है कि जगत् रथ में सात चक्र हैं जिनको सात अश्व चला रहे हैं। वहाँ सात मुख्य सूर्यों और उनके मण्डलों से अभिप्राय है। वैसे छोटे-छोटे मण्डल अन्य भी हैं।

मन्त्र में कहा है कि इन लोकों के आश्रय (सहारे) पाँच हैं। आधुनिक वैज्ञानिक बताते हैं कि नक्षत्र घूम रहे हैं भू-आकर्षण शक्ति से। परन्तु यह केवल नक्षत्रों की गति के विषय में ही कहा गया है। वेद जब सहारों की बात करता है तो इनके निर्माण, संगठन और इनमें अन्य गुणों के विषय में भी कह रहा प्रतीत होता है। इसी कारण पाँच सहारों की बात कही है।

पाँच शक्तियाँ हैं जिनके कारण जगत् का संगठन और गति होती है। इनको साँख्य की भाषा में तन्मात्रा कहते हैं। वैसे तो ये तेज की ही सन्तान हैं। कार्य के विचार से इनके पृथक् नाम हैं।

(१) अणु के भीतर की शक्ति जिससे प्रकृति के परमाणु संयुक्त हो अणु बनते हैं (Inter atomic energry.)।

(२) रासायनिक शक्ति जिससे रासायनिक योग बनते हैं (Chemical afinity)।

(३) जिससे अणु जुड़कर स्थूल पदार्थ बनते हैं (Molecular dynamic)।

(४) भू-आकर्षण (Gravity)।

(५) चुम्बकीय शक्ति (Magnetism)।

ये पाँच शक्तियाँ हैं जिनसे जगत् के पदार्थ संयुक्त होकर विविध रूप धारण करते हैं। यद्यपि ये सब एक ही शक्ति के रूप हैं, परन्तु कार्य भिन्न-भिन्न होने

पदार्थ—

(पञ्च) पाँच। (अरे) सहारे। (चक्रे) चक्र में। (परिवर्तमाने) बार-बार चक्र में होने वाले। (तस्मिन्) उसमें। (आ तस्थुः) चारों ओर से स्थित हैं। (भुवनानि) लोक। (विश्वा) समस्त।

(तस्य) उसका। (न) नहीं। (अक्षः) धुरा। (तप्यते) गर्म होता है। (भूरिभारः) भारी भार है जिसमें। (सनात् एव) सनातन काल से ही। (न) नहीं। (शीर्यते) घिसता। (सनाभिः) नाभि सहित।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से इनके नाम भी भिन्न-भिन्न दिये गये हैं। ये पाँच सहारे हैं जगत् के।

कहा है कि इस जगत् चक्र में समस्त भुवन नक्षत्र इन पाँच सहारों से चक्र लगा रहे हैं। ये नक्षत्र बार-बार चक्र लगाते हैं।

यद्यपि नक्षत्र बहुत बड़े-बड़े हैं और इनका बोझा भी अत्याधिक है और साथ ही ये पुरातन काल से चल रहे हैं, परन्तु इनका धुरा गर्म नहीं होता और इनकी नाभि जिसके चारों ओर ये घूम रहे हैं, घिसती नहीं।

तुलना की है रथ के चक्र से। रथ का चक्र तो जगत् के नक्षत्रों से बहुत हलका होता है। इस पर भी कुछ ही काल तक चलने पर गर्म हो जाता है और उसकी नाभि घिसने लगती है। इसके विपरीत यह जगत् चक्र अति प्राचीन काल से चल रहा है, परन्तु यह न तो घिसता है और न ही इसकी धुरी गर्म हो रही है।

अगला मंत्र जगत् में सौर-मण्डल के विषय में है।

सनेमि चक्रमजरं वि वावृत उत्तानायां दश युक्ता वहन्ति।
सूर्यस्य चक्षू रजसैत्यावृतं तस्मिन्नार्पिता भुवनानि विश्वा॥
(ऋ० १-१६४-१४)

यहाँ नेमियों का अर्थ उन किंचित् टेढ़ी लकड़ियों से है जो जुड़ कर चक्र की परिधि बनाती हैं। नेमियों सहित चक्र जो द्युलोक में स्थित है और जरा अवस्था को प्राप्त नहीं होता। उस चक्र में अरे हैं, जो युक्त हुए चक्राकार गति में चलाये जा रहे हैं।

रजसा का अभिप्राय है छोटे-छोटे कण। अन्तरिक्ष में कणों से अभिप्राय उन छोटे-छोटे नक्षत्रों से है जो सौर-मण्डल में सहस्रों की संख्या में गति कर रहे हैं। इन्हें अंग्रेज़ी में 'ऐस्टिरॉयेड' (asteriod) कहते हैं।

पदार्थ—

(सनेमि) नेमियों सहित। (चक्रमजरम्) अजर चक्र को। (वि वावृत) विशेष प्रकार से बार-बार चलाता है। (उत्तानायाम्) ऊपर स्थित, अर्थात् द्युलोक में। (दश) संख्या में दस। (युक्ता) जुड़े हुए। (वहन्ति) चलाते हैं।

(सूर्यस्य) सूर्य का। (चक्षू) देखने का गुण। (रजस्) छोटे-छोटे नक्षत्र। (एति) प्राप्त होता है। (आवृतम्) सब ओर से ढका हुआ। (तस्मिन्) उसमें। (अर्पिता) अर्पित हैं अर्थात् स्थापित हैं। (भुवनानि) लोक अथवा नक्षत्र। (विश्वा) समस्त। (ऋ० १-१६४-१४)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मन्त्र में कहा है कि ये छोटे-छोटे नक्षत्र भी उस (चक्र) में प्राप्त होते हैं अर्थात् प्रकाशित हो रहे हैं।

यह वृत्तान्त सौर-मण्डल का है। इसमें नौ मुख्य ग्रह हैं। वे हैं बुद्ध, मंगल, शुक्र, पृथिवी, चन्द्र, शनि, बृहस्पति, वरुण, पाताल और सूर्य। 'ऐस्टिरॉयड' (रजस्) इनसे पृथक् हैं। इन समस्त पर सूर्य की दृष्टि है। अर्थात् ये उसकी देख-रेख में हैं।

काल चक्र जो पूर्व मन्त्रों (१-१६४-११, १२) में कहा गया है, वह इस सौर-मण्डल से ही सम्बद्ध है। जो चक्र के पाँच सहारे मन्त्र १-१६४-१३ में वर्णन किये हैं, वही सौर-मण्डल के भी हैं। सौर-मण्डल जगत् चक्र का एक अंश मात्र ही है।

यहाँ अजर का अर्थ भी समझ लेना चाहिये। अजर का अभिप्राय है जो जरा अवस्था को प्राप्त नहीं होता, परन्तु इसका अर्थ अनादि और अमर नहीं है। इसका अभिप्राय यह है कि जब तक ये नक्षत्र और सूर्य चलते रहते हैं तब तक एक ही गति से चलते रहते हैं। ये वृद्धावस्था को प्राप्त नहीं होते; अर्थात् इनकी गति धीमी नहीं होती है। जैसे बूढ़े व्यक्ति की चाल धीमी हो जाती है वैसे इनकी नहीं होती।

जब प्रलय काल में ये विनष्ट होंगे तब ये एक साथ ही नष्ट होंगे। इस पर भी इनमें परिवर्तन तो होते रहते हैं। यहाँ 'अजर' का सम्बन्ध केवल गति से ही प्रतीत होता है। इसी मन्त्र में यह भी लिखा है कि ये शिथिल नहीं होते। जगत् रचना का वृत्तान्त ही आगे चलाया जा रहा है। कहा है कि एक साथ उत्पन्न हुओं में एक सातवाँ है। छः एक कारण से उत्पन्न हुए हैं और सातवाँ ऋषि अर्थात् प्राण देव (परमात्मा) से उत्पन्न हुआ है। यह सातवाँ अन्य छः पर नियन्त्रण रखता है।

सा.कंजानां सप्तथमाहुरेकजं षळिद् यमा ऋषयो देवजा इति।
तेषामिष्टानि विहितानि धामशः स्थात्र रेजन्ते विकृतानि रूपशः॥

(ऋ० १-१६४-१५)

Central Library
167963
Gurukula Kangri University Haridwar

पदार्थ :—

(साकंजानाम्) एक समान उत्पन्न हुओं में। (सप्तथम्) सातवाँ। (आहुः) कहते हैं। (एकजम्) एक कारण से उत्पन्न। (षट्) छः। (इत्) यह। (यमाः) नियन्त्रण करनेवाले। (ऋषयः) ऋषि अर्थात् प्राण। (देवजा) देव से उत्पन्न। (इति) ये सब।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनमें अर्थात् छः में प्रत्येक अपने पृथक्-पृथक् स्थान पर अपने इष्ट अर्थात् लक्ष्य की ओर चलाया जा रहा है। यह चलाना सातवाँ अर्थात् प्राण कर रहा है। इस चलने से रूपों में परिवर्तन हो रहा है।

इस मन्त्र में सात जो कहे गये हैं, ये सात पदार्थों की श्रेणियाँ हैं। संसार में उत्पन्न होनेवाले पदार्थों की सात श्रेणियाँ हैं। प्रत्येक श्रेणी में कई-कई पदार्थ हैं।

सातवें को वेद मन्त्र में ऋषि कहा है। यह प्राण है। शतपथ ब्राह्मण में इसके विषय में लिखा है—

तदाहुः किं तदसदासीदित्यृषयो वाव तेऽग्रेऽसदासीत्तदाहुः के तऽऋषय इति प्राणा वाऽऋषयस्ते यत्पुरास्मात्सर्वस्मादिदमिच्छन्तः। (शतपथ ६-१-१-१)

अर्थात्—इस पर कहते हैं कि असत् क्या था। पहले यह असत् ऋषि ही थे। इस पर कहते हैं कि वे ऋषि कौन थे। प्राण ही वे ऋषि थे। प्राण ही वे ऋषि थे जिन्होंने सबसे पहले इस सृष्टि को चाहा।

छः जो एक ही कारण से उत्पन्न हुए थे, वे प्रकृति के परिणाम थे। उनको जन्म देनेवाली प्रकृति थी और प्राण (देव) परमात्मा से उत्पन्न हुआ था। यह प्राण प्रकृति से उत्पन्न छः पर शासन करता है।

ये प्रकृति के परिणाम उत्पन्न तो प्रकृति से ही हुए हैं, परन्तु परिवर्तनों को प्राप्त होते हुए अपने पृथक्-पृथक् लक्ष्य तक पहुँचकर स्थिर हो गये हैं। यह पृथक्ता रूपों में ही है।

प्रकृति के छः परिणाम क्या हैं? उनकी गणना इस प्रकार की जा सकती है—(१) महत्; (२) आकाश महाभूत; (३) वायु महाभूत; (४) अग्नि महाभूत; (५) जल महाभूत; (६) पृथिवी महाभूत।

इनको प्रकृति से निर्माण करनेवाला प्राण है और इनको अपने रूप में स्थिर करने वाला भी प्राण है।

ऐसा प्रतीत होता है कि इस मन्त्र की व्याख्या में ही कपिल मुनि का सांख्य दर्शन है। प्रकृति के इन परिवर्तनों को सांख्य दर्शन इस प्रकार वर्णन करता है—

(तेषाम्) उनमें। (इष्टानि) अभिलाषित। (विहितानि) पृथक्-पृथक् निश्चय हुए। (धामशः) प्रत्येक स्थान पर (स्थात्रे) यहाँ स्थित है। (रेजन्ते) चलायमान को। (विकृतानि) परिवर्तित होते हुए अथवा स्थान बदलते हुए। (रूपशः) रूपों को।

(ऋ० १-१६४-१५)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सत्वरजस्तमां साम्यावस्था प्रकृतिः प्रकृतेर्महान् महतोऽहंकारोऽहंकारात् पञ्च तन्मात्राण्युभयमिनिन्द्रियं तन्मात्रेभ्यः स्थूलभूतानि पुरुष इति पञ्च-विंशतिर्गणः । (सांख्य १-६१)

अर्थात्—सत्त्व, रजः और तमः इन गुणों की साम्यावस्था को प्रकृति का नाम दिया है। गुणों की साम्यावस्था भंग होने पर पहले महत् बनता है। महत् में परिवर्तन होने पर अहंकार बनते हैं। अहंकारों से तन्मात्रायें बनती हैं। तन्मात्राओं से स्थूल पंच महाभूत बनते हैं। पुरुष पच्चीसवाँ गण पृथक् है।

प्रकृति को (ऋ० १०-१२९-३) सलिला कहा है। हम बता चुके हैं कि सलिला वे पदार्थ हो सकते हैं जिनके परमाणु अथवा अणु ढीले-ढाले परस्पर जुड़े हों। इस प्रकार प्रकृति परमाणुवत् है। प्रत्येक परमाणु में तीन गुण साम्यावस्था (equilibrium) में होते हैं। परमात्मा का तेज इस साम्यावस्था को भंग करता है। यह भी हम प्रथम परिच्छेद में मन्त्र १०-१२९-५ की व्याख्या में बता आये हैं कि परमात्मा का कामना रूपी तेज सलिला (प्रकृति) पर पड़ता है और उससे प्रकृति रूपवती होने लगती है।[1]

परमात्मा का तेज ही प्राण है जो प्रकृति के गुणों की साम्यावस्था को भंग करता है और फिर परिवर्तन उत्पन्न होने लगते हैं।

प्रकृति के परिणामों की स्थिर अवस्थायें वर्तमान वेद मन्त्र में वर्णन की गयी हैं। सांख्य भी इन अवस्थाओं को स्थिर मानता है; अर्थात् महत् और पंच महाभूत।

जब सृष्टि रचना का कार्यक्रम पूर्ण हो गया तो प्रकृति की ये छः अवस्थायें स्थिर हो गयीं और वह आज तक स्थिर हैं। ये प्रलय काल तक स्थिर रहेंगी। ऐसा ही वेद का मत है।

सांख्य दर्शन में प्रकृति के परिवर्तनों में पच्चीसवाँ गण पुरुष कहा है। वहाँ पुरुष से परमात्मा का अभिप्राय नहीं है। परमात्मा प्रकृति में परिवर्तन उत्पन्न करनेवाला है और यह पच्चीसवाँ गण प्रकृति के रूपों का भोग करनेवाला जीवात्मा है।

यहाँ इतना और समझ लेना चाहिये कि सांख्य दर्शन में प्रकृति के, पुरुष के अतिरिक्त, २४ गण कहे हैं और वेद में उनकी गणना छः ही की है। इसमें कारण यह है कि प्रकृति के स्थिर रूप तो छः ही हैं और शेष रूप स्थिर नहीं हैं।

प्रकृति का महत् रूप स्थिर है। जब तक कार्य जगत् रहता है, यह रूप विद्यमान रहेगा। यह प्राणी में मनन शक्ति का प्रतीक है। पंच महाभूत भी

१. इस विषय की व्याख्या के लिए 'विज्ञान और विज्ञान' पृष्ठ ३८ से ५० पढ़िये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकृति के स्थिर रूप हैं। अहंकार स्थिर रूप नहीं हैं। तन्मात्राएँ भी स्थिर रूप नहीं हैं। इन्द्रियों में प्राण ही हैं जो कार्य कर रहे होते हैं। इस कारण जब प्रकृति के स्थिर रूपों का वर्णन किया गया तो महत् और पाँच महाभूत ही गिनाये हैं।

: ५ :

अब हम प्राणियों से प्राणी की रचना के विषय में बतायेंगे--

स्त्रियः सतीस्ताँ उ मे पुंस आहुः पश्यदक्षण्वान्न वि चेतदन्धः।
कविर्यः पुत्रः स ईमा चिकेत यस्ता विजानात् स पितुष्पितासत्॥
(ऋ० १-१६४-१६)

इस वेद मन्त्र में यह प्रेरणा दी गयी है कि सद्गुण युक्त स्त्रियाँ गुणवान् पुरुषों को देखें और अज्ञानियों को न देखें और न जानें।

यहाँ देखने और जानने का अभिप्राय यह है कि स्त्रियाँ गुणवान् पुरुषों को वरें और अज्ञानियों को न वरें। यह सन्तानोत्पत्ति के विषय में है।

इस संयोग से जो पुत्र उत्पन्न हो, उसके विषय में मन्त्र में कहा है कि वह सब ओर से जाने कि क्रान्तदर्शी पिता, उसके पिता का पिता अर्थात् पितामह है।

सब ओर से जाने से यह अर्थ लेना चाहिए कि मनुष्य किसी प्रकार से भी जानना चाहे तो वह इस परिणाम पर ही पहुँचेगा कि आदि मनुष्यों का जन्म-दाता परमात्मा ही है और उन प्रथम मनुष्यों से ही पूर्ण मानव सृष्टि हुई है। यही बात अन्य सब प्राणियों की भी है।

स्त्रियों को पति वरने का अधिकार दिया गया है। वे देखें कि कौन ज्ञानवान है और फिर वरें और अज्ञानी को न वरें। इस पर भी वे जानें कि वास्तविक रचना करनेवाला परमात्मा है। वह ही पुरुष और स्त्री में उन जीवित कोषाणुओं का निर्माण करता है जो सन्तानोत्पत्ति में कारण होते हैं।

पदार्थ—

(स्त्रियः) स्त्रियाँ। (सतीः) सद्गुणों से युक्त। (ताम्) उनको। (उ) और। (मे) मेरे। (पुंस) पुरुष को। (आहुः) कहते हैं। (पश्चात्) देखें। (अक्षण्वान्) ज्ञानवान। (न) नहीं। (वि चेतत्) विशेष प्रकार से जानें। (अन्धः) अज्ञानी को।

(कविः) क्रान्तदर्शी। (यः) जो। (पुत्रः) पुत्र। (स) वह। (ईम) अब। (आ चिकेत) सब ओर से जानें। (विजानात्) भली प्रकार जानें। (स) वह। (पितुः पिता असत्) पिता का पिता है। (ऋ० १-१६४-१६)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्त्री में अण्ड (ovum) और पुरुष में बीज कोषाणु (sperm) को उत्पन्न करने का नियम उसी का बनाया हुआ है।

इसी विषय में और भी कहा है। होनेवाले वत्स में जीवात्मा कहाँ से आता है ?

अवः परेण पर एनावरेण पदा वत्सं बिभ्रती गौरुदस्थात्।
सा कद्रीची कं स्विदर्धं परागात् क्व स्वित् सूते नहि यूथे अन्तः ।।
(ऋ० १-१६४-१७)

उत्पन्न होनेवाले नीचे (की योनियों) से, परले (की योनियों अर्थात् मनुष्य से सर्वथा भिन्न योनियों) से, पीछे की ओर उससे उरले (समीप की योनियों) से पदों (क्रम अर्थात् पग-पग करके) से गमन करनेवाले उठते हैं (अर्थात् मनुष्य योनि में आते हैं)।

वह अप्रत्यक्ष गति से उत्पन्न होनेवाली सन्तान किसको प्राप्त होती है ? कभी बीच में आधे में ही लौट जाती है। कैसे, कहाँ पालने योग्य को उत्पन्न करती है, समूह में नहीं।

ऋग्वेद के इन मन्त्रों में सन्तानोत्पत्ति का वर्णन हो रहा है। पूर्व के (१-१६४-१६) मन्त्र में यह कहा गया है कि सद्गुण युक्त स्त्रियाँ ज्ञानवान् पुरुषों को वरें और सन्तान उत्पन्न करें। वह सन्तान परमात्मा के पोते-पोतियों के समान होगी। कारण यह कि आदि प्राणी-सृष्टि परमात्मा ने ही की थी।

इस मन्त्र (१-१६४-१७) में यह बताया है कि सन्तान किधर से आती है, कहना कठिन है। नीचे की योनियों से आती है, समीप की योनियों से अथवा दूर की योनियों से आती है ? क्या वह समान स्तर की योनियों से आती है ? आने वाले जीवात्मा हैं और वे निश्चित नियम से आते हैं, अर्थात् उनका

पदार्थ—

(अवः) नीचे से। (परेण) परले से। (पर) पीछे से। (एना) इससे। (अवरेण) उरले से। (पदा) पाँव से। (वत्सम्) सन्तान को। (बिभ्रती) धारणा करती हुई। (गौः) गमन करनेवाली। (उदस्थात्) उठती है।

(सा) वह। (कद्रीची) अप्रत्यक्ष गतिवाली। (कम्) किसको। (स्वित्) कैसे। (अर्धम्) आधे को। (परा अगात) लौट जाती है। (क्व) कहाँ। (स्वित्) कैसे। (सूते) पालने योग्य को उत्पन्न करती है। (नहि) नहीं। (यूथे) समूह में। (अन्तः) बीच में। (ऋ० १-१६४-१७)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्क्रमण तथा निम्न क्रमण पग-पग कर होता है।

साथ ही यह भी कहा है कि वह (माता) अप्रत्यक्ष गतिवाले जीवात्मा को सन्तान के रूप में उत्पन्न करती है और पालन करती है। कभी-कभी सन्तान आधे में से ही लौट जाती है। यह सन्तान एक-एक कर उत्पन्न करती है, समूह में नहीं। जैसे कई इतर जीव-जन्तु समूहों में उत्पन्न होते हैं।

यहाँ मनुष्य-उत्पत्ति का विशेष रूप में वर्णन किया जा रहा है। कारण यह कि मनुष्य योनि पृथिवी पर सब जीव-जन्तुओं से श्रेष्ठ है। इस पर भी इससे श्रेष्ठ लोक भी हैं। इस योनि में ऊपर से अर्थात् पितर लोक से भी जीवात्मा आते हैं और निम्न प्रकार की योनियों (कीट, पतंग इत्यादि) से भी आते हैं। जीवात्मा कर्म फल के आधार पर योनि बदलता है।

इसी विषय पर आगे कहा है—

अवः परेण पितरं यो अस्यानुवेद पर एनावरेण।
कवीयमानः क इह प्र वोचद् देवं मनः कुतो अधि प्रजातम् ॥

(ऋ० १-१६४-१८)

जो तत्त्वदर्शी यहाँ नीचे (मनुष्य योनि में) उत्पन्न होता है, वह भली प्रकार जान जाता है कि वह ऊपर, नीचे, दूर अथवा समीप, कहाँ से आया है?

पूर्व के मन्त्र में कहा था कि जीवात्मायें श्रेष्ठ योनियों से भी आती हैं और नीचे की योनियों से भी। यह पता नहीं चलता कि वे कहाँ से आती हैं? इस मन्त्र में बताया है कि तत्त्वदर्शी, जो पालन करनेवाले परमेश्वर को जानते हैं, वे यह जान जाते हैं कि वे कहाँ से आये हैं?

परमात्मा का ज्ञान होने के उपरान्त ही यह जाना जा सकता है कि वह कहाँ से आया है और क्यों आया है? परमात्मा को जानने का अभिप्राय ह परमात्मा से जुष्ट होना। परमात्मा का सामीप्य प्राप्त करने को जुष्ट होना कहते हैं। यह योगभ्यास का विषय है।

पदार्थ—

(अवः) नीचे से। (परेण) परले से। (पितरं) पालन करनेवाले को। (यो) जो। (अस्य) इसका। (अनुवेद) जानने के उपरान्त। (परः) दूर से। (एना अवरेण) इस नीचे से।

(कवीयमानः) अति विद्वान। (क) कौन। (इह) यहाँ। (अधि प्र वोचत्) भली प्रकार जानता है। (देवं) दिव्य गुणवाले को। (मनः) मन। (कुतः) कहाँ से। (प्रजातम्) उत्पन्न होता है। (ऋ० १-१६४-१८)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकृति जीवात्मा पर छायी रहती है, अर्थात् जीवात्मा इसके भोगों में लिप्त रहता है। इससे अलिप्त होना, अर्थात् भोगों में रस लेना छोडने से यह बंध छूट सकता है। इसको भगवदगीता में निस्पृहता के नाम से वर्णन किया है।

कामक्रोधवियुक्तानां यतीनां यतचेतसाम्।
अभितो ब्रह्मनिर्वाणं वर्तते विदितात्मनाम्॥ (भ० गी० ५-२६)

अर्थात्—काम, क्रोध से रहित हो चित की वृत्तियों पर विजय प्राप्त कर ज्ञानी पुरुष सब ओर से शान्त परब्रह्म परमात्मा को प्राप्त होते हैं।

यह आनेवाला और लौट जानेवाला जीवात्मा है। यह पूर्व के मन्त्र (ऋ० १-१६४-१७) में कहा है। इसका अभिप्राय है कि निम्न योनियों के जीवात्मा मनुष्य जीवन में आते हैं और बिना लक्ष्य स्थान (मोक्षावस्था) को प्राप्त किये लौट जाते हैं। यह मनुष्य जीवन में अज्ञानतापूर्ण कर्म करने का फल है।

इसी विषय पर और भी कहा है—

ये अर्वाञ्चस्ताँ उ पराच आहुर्ये पराञ्चस्ताँ उ अर्वाच आहुः।
इन्द्रश्च या चक्रथुः सोम तानि धुरा न युक्ता रजसो वहन्ति॥
(ऋ० १-१६४-१९)

जो (लोग) नीचे को जानेवाले हैं, उन्हें तो परे (बहुत ऊँचे तक) पहुँचे हुए और जो ऊपर से नीचे आनेवाले हैं, उनको ऊपर पहुँचा हुआ कहते हैं। (ऐसा सामान्य संसारी लोग कहते हैं)।

(यह ठीक ऐसे ही है जैसे) सूर्य और चन्द्र उन छोटे-छोटे नक्षत्रों को अपनी ओर बहाकर ले जाते हैं जो धुरी से नहीं जुड़े हुए।

इसका भावार्थ यह है कि जैसे छोटे-छोटे नक्षत्र जो किसी बड़े नक्षत्र की धुरी से बंधे नहीं, चन्द्र और सूर्य अथवा किसी अन्य बड़े नक्षत्र से अपनी ओर खींच लिये जाते हैं, वैसे ही जीवात्माओं को प्रकृति के भोग अपनी ओर खींच ले जाते हैं और जो उनसे दूर जा रहे होते हैं, उनको अज्ञानी नीचे

पदार्थ—

(ये) जो। (अर्वाञ्चः) नीचे जानेवाले हैं। (तान्) उनको। (उ) तो। (पराचः) परे को पहुँचे हुए। (आहुः) कहते हैं। (ये) जो। (पराञ्चः) परे से आनेवाले, अर्थात् लौटनेवाले। (आहुः) कहते हैं।

(इन्द्रः) सूर्य। (च या) और अथवा। (सोम) चन्द्र। (चक्रथुः) चलते हुए। (तानि) उनको। (धुरा) धुरी से। (न) नहीं। (युक्ता) जुड़े हुए। (रजसः) छोटे नक्षत्रों को। (वहन्ति) अपनी ओर बहा लाते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गिरनेवाला कहते हैं और नीचे गिरनेवालों को (भोग परायण को) ऊपर जाने-वाला कहते हैं।

इस मन्त्र में रजस् का अर्थ उन नक्षत्रों से है जिन्हें अंगेजी में 'ऐस्टिरायड्स' कहते हैं। सूर्य, चन्द्र की उपमा लोक-व्यवहार को समझाने के लिए दी गयी है। दुर्जन लोग दूसरों को अपनी ओर आकर्षित करने के लिए नीचे वालों को ऊपर और ऊपर वालों को नीचे जानेवाला कहते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तृतीय परिच्छेद

: १ :

अभी तक विश्व के देवताओं का कार्य और उनकी उत्पत्ति का, दो क्षेत्रों में वर्णन किया गया है। प्रथम परिच्छेद में दो दिव्य गुण सम्पन्न तत्त्वों का वर्णन और उनसे जगत्-रचना के कार्य के आरम्भ का वर्णन किया है। एक तो महान् क्रान्तदर्शी मनीषी का वर्णन है और दूसरे स्वधा का। महान् मनीषी अर्थात् परमात्मा की यज्ञरूप कामना ही इस जगत् रचना में बीज रूप में कारण बन गयी और स्वधा में से पंच महाभूत और उनसे जगत् के अनेकानेक पदार्थ बने। इसे श्वेताश्वतर उपनिषद् में इस प्रकार कहा है—

अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां बह्वीः प्रजाः सृजमानां सरूपाः।

(श्वेता० ४-५)

अजन्मा स्वधा जो रजस्, सत्त्व और तमस् गुणोंवाली है, उसने अपने गुणवाले बहुत से पदार्थों की रचना की है।

इस रचना का संक्षिप्त-सा वर्णन इस पुस्तक के प्रथम परिच्छेद में किया जा चुका है। वहाँ दो दिव्य गुण सम्पन्न तत्त्वों का वर्णन है।

द्वितीय परिच्छेद में पूर्वोक्त दो दिव्य तत्त्वों के अतिरिक्त एक तीसरे तत्त्व का वर्णन आरम्भ कर दिया था। वह तत्त्व जीवात्मा है। इसे परमात्मा तत्त्व का भाई कहा है। इस परिच्छेद में इन तीनों के परस्पर सहयोग से जगत् की वर्तमान स्थिति में आने का तथा पृथिवी पर प्राणी सृष्टि के होने का वर्णन है। जीवात्मा का सहयोग प्राणी-सृष्टि में हुआ है।

प्रथम प्राणी पृथिवी और सूर्य के संयोग से (नर-नारी के संयोग की भाँति) हुआ और पीछे प्राणियों में नर-नारी स्वयमेव सृष्टि-रचना करने लगे।

अब प्राणी के व्यवहार के विषय में लिख दिया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परि षस्वजाते ।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभि चाकशीति ।।
(ऋ० १ १६४-२०)

एक वृक्ष पर आश्रय ले स्थित दो पक्षी हैं। वे परस्पर सम्बद्ध हैं और सखाभाव रखते हैं। इन दो में से एक उस वृक्ष के पके हुए फल खाता है (अर्थात् निर्मित पदार्थों का भोग करता है) और दूसरा उसके फलों का भोग नहीं करता। वह साक्षी रूप में देखता रहता है

यहाँ वृक्ष से अभिप्राय है प्रकृति। वृक्ष के शाब्दिक अर्थ हैं जो काटा-छाँटा जा सके। प्रकृति के विषय में हम प्रथम परिच्छेद में बता चुके हैं कि उसमें परिवर्तनों से अनेक पदार्थ बनते हैं। अतः वृक्ष से अभिप्राय प्रकृति का ही है।

जगत में इस प्रकृति के आश्रय से दोनों चेतन तत्त्व जिन्हें सुपर्णा कहा है, स्थित हैं। जीवात्मा के विषय में तो हम देखते हैं कि इसका प्राकट्य (manifestation) शरीर द्वारा ही होता है और शरीर प्रकृति का बना है। इस प्रकार जगत् म परमात्मा का प्राकट्य जगत् के पदार्थों द्वारा होता है।

इसी कारण वेद में लिखा है कि दोनों आत्म तत्त्व प्रकृति के आश्रय स्थित हैं।

परमात्मा साक्षी रूप देखता है और स्वयं प्रकृति के पदार्थों का भोग नहीं करता।

इस मन्त्र में जगत् के दो मूल तत्त्वों का प्रकृति से सम्बन्ध बताया है। यद्यपि परमात्मा जगत का निमित्त कारण माना है; तथापि वह जगत् के पदार्थों का भोग नहीं करता।

परमात्मा, जीवात्मा और प्रकृति के परस्पर इस सम्बन्ध को श्वेताश्वतर उपनिषद् ने भी ऐसा ही वर्णन किया है जैसा कि वेद ने किया है। वहाँ

पदार्थ—

(द्वा) दो। (सुपर्णा) सुन्दर पंखोंवाले। (सयुजा) साथ-साथ रहनेवाले। (सखाया) सखा भाव रखते हुए। (समानम्) एक समान ही। (वृक्षम्) वृक्ष पर। (परि षस्वजाते) आश्रित अर्थात् स्थित हैं।

(तयोरन्यः) उनमें एक। (पिप्पलम्) पके हुए। (स्वात्) स्वादु। (अत्ति) खाता है। (अनश्नन्न) खाता अर्थात् भोग न करता हुआ। (अन्यः) दूसरा। (अभिचाकशीति) सब ओर से देखता है। अभिप्राय यह कि साक्षी रूप है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिखा है—

संयुक्तमेतत्क्षरमक्षरं च व्यक्ताव्यक्तं भरते विश्वमीशः।
अनीशश्चात्मा बध्यते भोक्तृभावाज् ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशैः ।।

(श्वेता० १-८)

प्रकृति, क्षर और अक्षर दो रूपों में (जगत् में) उपस्थित है। अक्षर रूप, जो कारण रूप भी है, अव्यक्त है और क्षर रूप में प्रकृति व्यक्त इन्द्रिय-गोचर को कहते हैं। जगत् के इन दोनों रूपों का ईश पालन करता है। निर्बल जीवात्मा इसके भोगों में पड़कर इससे बंध जाता है।

जब जीवात्मा देव (परमात्मा) के दर्शन कर लेता है तब वह सब बन्धनों से मुक्त हो जाता है।

यह हम बता चुके हैं कि वेद वस्तु स्थिति का वर्णन मात्र है, परन्तु दर्शन शास्त्र इस स्थिति को युक्ति से सिद्ध करने का यत्न करता है। हमने परमात्मा के अस्तित्व को सिद्ध करने के लिए ब्रह्मसूत्र के प्रमाण दिए हैं। इसी प्रकार जीवात्मा के अस्तित्व को भी दर्शनशास्त्रों ने सिद्ध किया है।

कहा है—

व्यतिरेकानवस्थितेश्च अनपेक्षत्वात् ।। (ब्र० सू० २-२-४)

उल्टी स्थिति नहीं होती बिना किसी (चेतन) की अपेक्षा के। अपेक्षा का अर्थ है कारण-कार्य भाव (cause and effect)।

अभिप्राय यह कि प्रकृति में स्थिति का बदलना बिना किसी कारण उत्पन्न करने वाले चेतन के नहीं हो सकता। यदि यह स्थिर है तो स्थिर ही रहेगी और यदि यह गतिशील है तो गति करती ही रहेगी।

परन्तु प्राणी के शरीर को हम हिलता-डोलता, चलता-फिरता व कार्य करता देखते हैं। इस कारण प्राणी के शरीर में हो रहे कार्य का कारण रूप चेतन तत्त्व इसमें अनुमान लगाते हैं। यह चेतन तत्त्व उस चेतन तत्त्व से भिन्न है जो जगत् के पदार्थों को चलाता और उनसे कार्य कराता है। वह परमात्मा है। परमात्मा ज्ञानवान् और महान् शक्ति का स्वामी है। जीवात्मा ऐसा नहीं।

जीवात्मा और परमात्मा में एक स्पष्ट अन्तर है। जगत् की रचना का कार्य जीवात्मा नहीं कर सकता। रचना-कार्य का मूल इस पुस्तक के प्रथम परिच्छेद में लिखा है। वह यह कि अपने तेज को तरंगों के रूप में स्वधा के परमाणुओं पर डालकर उनमें गुणों की साम्यावस्था को भंग कर देता है। यह सृष्टि रचना कार्य का आरम्भ है। ऐसा जीवात्मा नहीं कर सकता। अतः जीवात्मा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परमात्मा नहीं है।

इतना वर्णन कर कि कार्य जगत् पर आश्रित दो चेतन तत्त्व हैं, दोनों 'सयुजा सखाया' विशेषणों से स्मरण किये गए हैं, अब जीवात्मा के विषय में वर्णन किया है।

यत्रा सुपर्णा अमृतस्य भागमनिमेषं विदथाभिस्वरन्ति ।
इनो विश्वस्य भुवनस्य गोपाः स मा धीरः पाकमत्रा विवेश ।।
(ऋ० १-१६४-२१)

जहाँ ज्ञानवान सुन्दर पंखों वाला (चेतन तत्त्व) मोक्ष के भाग को निरन्तर और प्रत्यक्ष रूप में कहता है अर्थात् उसके लिए इच्छा प्रकट करता है, वहाँ भुवनों अर्थात् लोकों का स्वामी और पालन करने वाला परमात्मा मुझ धीर अर्थात् बुद्धिमान को, जो ज्ञान से परिपक्व हो चुका है, चारों ओर से प्राप्त होता है।

मन्त्र संख्या १-१६४-२० में जीवात्मा को कार्य जगत के स्वादु फल खाने वाला कहा है। वर्तमान मन्त्र १-१६४-२१ में कहा है कि ज्ञानवान जीवात्मा मोक्ष प्राप्त करने के लिए इच्छा करता है और लोक-लोकान्तर का पालन करने वाला स्वामी परमात्मा ज्ञानवान जीवात्मा को चारों ओर से प्राप्त होता है अर्थात् उसे मिलता है।

इसी भाव को उपनिषद् ग्रन्थों में अधिक व्याख्या से बताया है। एक मन्त्र श्वेताश्वतर उपनिषद् का (१-८) हम ऊपर उद्धृत कर चुके हैं।

मुण्डकोपनिषद् कहता है—

भिद्यते हृदयग्रंथिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः ।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे ।।
(मुण्डको० २-२-८)

पदार्थ—

(यत्रा) जहाँ। (सुपर्णा) सुन्दर पंखों वाला। (अमृतस्य) मोक्ष का। (भागम्) भाग। (अनिमेषम्) निरन्तर। (विदथ) ज्ञानवान। (अभिस्वरन्ति) प्रत्यक्ष कहते हैं।

(इनः) स्वामी। (विश्वस्य) विश्व के। भुवनस्य) ग्रहों का। (गोपाः) पालन करने वाला। (स) वह। (मा) मुझे। (धीरः) बुद्धिमान को। (पाकम्) परिपक्व को अर्थात् ज्ञान प्राप्त को। (अत्र) यहाँ। (अविवेश) चारों ओर से प्रवेश करता है। (क्रम १-१६४-२१)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थात्—परमात्मा का साक्षात्कार हो जाने पर जीव की, जिसे सुपर्णा कहा गया है, हृदय-ग्रन्थियाँ टूट जाती हैं। सब संशय नष्ट हो जाते हैं और उसके कर्म (कर्मफल) क्षीण हो जाते हैं।

ऐसे ही जीवात्मा के लिए मन्त्र में शब्द 'पाकम्' का प्रयोग हुआ है। उसे ज्ञानवान कहा है।

और जो जीवात्मा ज्ञानवान नहीं होता !

यस्मिन् वृक्षे मध्वदः सुपर्णा निविशन्ते सुवते चाधि विश्वे।
तस्येदाहुः पिप्पलं स्वाद्वग्रे तन्नोन्नशद्यः पितरं न वेद ॥
(ऋ० १-१६४-२२)

पूर्व मन्त्र में यह कहा है कि ज्ञानवान जीवात्मा मोक्ष प्राप्त करने की इच्छा करता है और उसी हेतु परमात्मा से युक्त होना चाहता है। इस मन्त्र में यह बताया है कि जो जीवात्मा ज्ञानवान नहीं, वे इस जगत् को स्वादु मान इसका रस लेते हैं, सन्तान उत्पन्न करते हैं और इसे (संसार को) न नष्ट होने वाला कहते हैं। वे जीव परमात्मा को नहीं जानते।

ऐसे जीवात्मा का क्या परिणाम होता है? वह अधिक व्याख्या से उपनिषद् में लिखा है। कठोपनिषद् में कहा है—

पराचः कामाननुयन्ति बालास्ते मृत्योर्यन्ति विततस्य पाशम्।
अथ धीरा अमृतत्वं विदित्वा ध्रुवमध्रुवेष्विह न प्रार्थयन्ते ॥
(कठ० २-१-२)

न साम्परायः प्रतिभाति बालं प्रमाद्यन्तं वित्तमोहेन मूढम्।
अयं लोको नास्ति पर इति मानी पुनः पुनर्वशमापद्यते मे ॥
(कठ० १-२-६)

अर्थात्—अल्पज्ञ पुरुष बाह्य भोगों के पीछे लगे रहते हैं। वे मृत्यु के सर्वत्र

पदार्थ—

(यस्मिन) जिसमें। (वृक्षे) वृक्ष में। (मध्वदः) मधु खाने वाला। अभिप्राय यह कि स्वाद लेने वाला। (सुपर्णा) सुन्दर पंखों वाला जीवात्मा। (निविशन्ते) स्थित होते हैं। (सुवते) सन्तान उत्पन्न करते हैं। (च) और। (अधि विश्वे) अधिकार युक्त होकर संसार में।

(तस्य) उसका। (इत्) यह। (आहुः) कहते हैं। (पिप्पलम्) पके फलों को। (स्वादु) स्वादिष्ट है। (अग्रे) पहले। (तत्) वह। अभिप्राय कर्म फल से है। (न) नही। (अनशतत्) न नष्ट होता। (यः) जो। (पितरं) पालन करने वाले को। (न) नहीं। (वेद) जानता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फैले हुए पाश में पड़ते हैं। किंतु विवेकी पुरुष अमरत्व को ध्रुव जानकर संसार के अनित्य पदार्थों में से किसी की इच्छा नहीं करते।

धन के लोभ में फंसे हुए और प्रमाद करने वाले को परलोक का साधन नहीं सूझता। लोक है और परलोक नहीं। ऐसा मानने वाला व्यक्ति बारम्बार मेरे (यम के) वश को प्राप्त होता है।

अभिप्राय यह कि सांसारिक भोगों में फंसा व्यक्ति परमात्मा को नहीं जानता, अर्थात् वह अज्ञानी है।

यद् गायत्रे अधि गायत्रमाहितं त्रैष्टुभाद् वा त्रैष्टुभं निरतक्षत।
यद् वा जगज्जगत्याहितं पदं य इत् तद् विदुस्ते अमृतत्वमानशुः॥
(ऋ० १-१६४-२३)

गायत्र के कई अर्थ हैं। तीनों लोक, भूलोक, प्राण, अग्नि, ब्राह्मण, ब्रह्म वर्चस, तेज, वीर्य इत्यादि। इसी प्रकार 'त्रिष्टुप' शब्द के भी कई अर्थ लिए जाते हैं। उदाहरण के रूप में पृथिवी, अन्तरिक्ष, द्यौ, वज्र, इन्द्र, वरुण, ओज, प्राण इत्यादि।

जगति के भी बहुत अर्थ लिए हैं। संसार में उपस्थित मुख्य-मुख्य सब स्थूल पदार्थ इसमें आ जाते हैं।

समस्या यह है कि इस मन्त्र में क्या अर्थ लिए जायें। हमरा विचार है कि ये तीन शब्द गायत्र, त्रिष्टुप और जगति व्योम में उपस्थित तीन प्रकार के पदार्थों के नाम हैं। गायत्र प्राणादि शक्तियों का सूचक है अथवा उन पदार्थों का सूचक है जिनमें प्राणादि शक्तियाँ कार्य करती हैं। त्रिष्टुप् शब्द अन्तरिक्ष में उपस्थित शक्तियों तथा उन पदार्थों का सूचक है जिनमें अन्तरिक्ष के देवता उपस्थित हैं। इसी प्रकार जगति से अभिप्राय जगत् के स्थूल पदार्थों से है।

यह हम इस कारण कहते हैं कि इस मन्त्र में ज्ञानवान जीवात्मा की व्याख्या

पदार्थ—

(यद्) जो। (गायत्रं) गायत्र में। (गायत्रम् अधि अहितम्) गायत्र स्थित है। (वा) अथवा। (त्रैष्टुभम्) त्रिष्टुप को। (त्रैष्टुभात्) त्रिष्टुप से। (निरतक्षत्) निरन्तर विस्तार करता है।

(यद्) जो। (वा) अथवा। (जगत्याम्) जगति में। (जगत्) जगत्। (अहितम्) स्थित है। (पदं) पद को। (य) जो। (इत्) ही। (तत्) उसको। (विदुः) जानता है। (ते) वे। (अमृतत्वम्) मोक्ष धाम को। (अनशुः) प्राप्त होते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिखी है। ज्ञानवान वही हो सकता है जो इस पृथ्वी से लेकर ईश्वर पर्यन्त सब पदार्थों के विषय में जानता है।

अतः इस मन्त्र (१-१६४-२३) में यह कहा है कि वह जीवात्मा ज्ञानवान है जो गायत्री छन्दों में वर्णित है। गायत्रों से अभिप्राय यह है कि उन शक्तियों को जानता है जो प्राणादि व्योम में कार्य कर रही हैं जिनसे जगत् रचना आरम्भ होती है।

इसी प्रकार जो त्रिष्टुप् छन्दों में वर्णित अन्तरिक्ष की शक्तियों को जानता है; अन्तरिक्ष की शक्तियाँ पृथिवी पर वर्षा ऋतु, गर्मी, सर्दी, इत्यादि उत्पन्न करती हैं ऐसा जानता है;

जो जगत् के स्थूल पदार्थ का ज्ञान जगति छन्दों में गान करता है, ऐसा पुरुष अमृतत्व पाने का अधिकारी होता है।

मन्त्र १-१६४-२० में संसार के तीन तत्त्वों का परस्पर सम्बन्ध बता कर जीवात्मा को दो श्रेणियों में बाँटा है। एक जो ज्ञानी हैं और अमृत की इच्छा करते हैं। उनके विषय में मन्त्र १-१६४-२१ में कहा है। और दूसरे जो अज्ञानी हैं और संसार के भोगों में लिप्त हैं, उनका वर्णन मन्त्र १-१६४-२२ में किया है। इस मन्त्र में यह बताया है कि मोक्ष पद पाने के लिए किस बात की आवश्यकता है। मोक्ष प्राप्ति के लिये जगत्, अन्तरिक्ष और अन्तरिक्ष से ऊपर व्योम के पदार्थों का ज्ञान प्राप्त करना चाहिये। इसी कारण विद्या और अविद्या दोनों प्रकार के ज्ञान के जानने वालों के लिये मोक्ष कहा गया है।

यजुर्वेद का एक मन्त्र है—

विद्यां चाविद्यां च यस्तद्वेदोभय सह।
अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययाऽमृतमश्नुते॥ (४०-१४)

अर्थात्—जो विद्या (अध्यात्म) को और साथ ही अविद्या (कार्य जगत्) को, दोनों को एक साथ जानता है, वह अविद्या से तो मृत्यु को पार कर जाता है और विद्या से अमरता को प्राप्त करता है।

विद्या-अविद्या के विषय में महाभारत में बहुत ही स्पष्ट रूप से वर्णन किया गया है। वहाँ लिखा है—

अविद्यामाहुरव्यक्तं सर्गप्रलयधर्मि वै।
सर्गप्रलयनिर्मुक्तां विद्या वै पञ्चविंशकः॥ (महा भा० शा० ३०७-२)

अव्यक्त प्रकृति जो सर्ग धर्म वाली है और कार्य जगत् यह अविद्या है और पच्चीसवां पुरुष (जीवात्मा और परमात्मा) यह विद्या है।

अतः इस वेद मन्त्र में कहा है कि गायत्र जो गायत्री छन्द में उपस्थित है,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

त्रिष्टुप् जो त्रैष्टुभ छन्द में गान किया जाता है और जगत् जो जगति छन्द में गान किया जाता है, इन सबको जानने से मनुष्य ज्ञानवान होता है तथा ज्ञानवान होने से मोक्ष की इच्छा करता है और उसे प्राप्त करता है।

ऊपर हम यह बता चुके हैं विश्व में उपस्थित तीन मूल तत्त्वों का परस्पर क्या सम्बन्ध है ? उन तीनों तत्त्वों में जीवात्मा की स्थिति का वर्णन किया है कि जब वह ज्ञानवान हो जाता है तो वह मोक्ष प्राप्त करने की इच्छा करता है। साथ ही यह भी बताया है कि ज्ञान के क्या अर्थ हैं। विद्या और अविद्या दोनों का ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक है। इससे जीवात्मा मृत्यु को पारकर मोक्ष का भागी हो जाता है।

अब इन मन्त्रों में, ज्ञान क्या है, इस विषय में बता रहे हैं।

गायत्रेण प्रति मिमीते अर्कमर्केण साम त्रैष्टुभेन वाकम्।
वाकेन वाकं द्विपदा चतुष्पदाऽक्षरेण मिमते सप्त वाणीः॥
(ऋ० १-१६४-२४)

व्योम में उपस्थित प्राण इत्यादि अक्षर (अविनाशी) द्वारा बार-बार मिमते हैं। मन्त्र को मन्त्र द्वारा गान किया जाता है। त्रिष्टुप छन्द द्वारा वाणी कही जाती है। वाणी द्वारा वाणी को दो अथवा चार पदों में कहा जाता है और वह सात रूपों में कहा जाता है।

इस वेद मन्त्र में शब्द आया है 'प्रति मिमीते'। महर्षि स्वामी दयानन्द ने इसका अर्थ किया है प्रतिमान करता है। प्रतिमान का अर्थ है एक आदर्श (model) उपस्थित करना। 'प्रति मिमीते' के अर्थ प्रतिमान अर्थात् नमूना उपस्थित करना भी ठीक है; परन्तु वेद के इसी सूक्त में इस शब्द के अन्य स्थानों पर प्रयोग देखने पर केवल 'आदर्श' से कुछ अधिक अर्थों का पता चलेगा।

यह शब्द जहाँ-जहाँ भी आया है, वेद वाणी के सम्बन्ध में ही आया है। मंत्र १-१६४-२४ में एक बार मिमीते के रूप में आया है और दूसरी बार मिमते के

पदार्थ—

(गायत्रेण) प्राणादि व्योम की शक्तियों द्वारा। (प्रति) बार-बार। (मिमीते) कहा जाता है। (अर्कम्) मन्त्र को। (अर्केण) मंत्र द्वारा। (साम) मन्त्र गान। (त्रैष्टुभेन) त्रिष्टुप द्वारा। (वाकम्) वाणी को।

(वाकेन) वाणी द्वारा। (वाकं) वाणी को (द्विपदा) दो पदोंवाली। (चतुष्पदा) चार पदवाली। (अक्षरेण) अविनाशी द्वारा। (मिमते) मिमत होती है। (सप्तवाणीः) सात प्रकार की वाणी। (ऋ० १-१६४-२४)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रूप में। मिमते के रूप में यह 'अक्षरेण मिमते सप्त वाणीः' पद में आया है। अर्थ बनते हैं परमात्मा द्वारा सात प्रकार से वेद वाणी मिमत की जाती है।

यही शब्द मन्त्र १-१६४-२८ में दो बार प्रयुक्त हुआ है। एक बार यह कहा है 'गौः अमीमेत्'। इसका अर्थ बनता है गाय ने मिमाया। अर्थात्, मा-मा किया। इसी मन्त्र में दूसरी बार यह शब्द आया है, 'मिमाति मायुं'। इसका अर्थ है मिमाती हुई वाणी को प्रसारित करती है।

यही शब्द पुनः मन्त्र १-१६४-२९ में आता है। यहाँ कहा है—

'शिङ्क्ते येन गौः अभीवृता मिमाति मायुं'।

अर्थ हैं—अव्यक्त ध्वनि करती है जिससे वाणी चारों ओर से ढकी हुई मिमाती है और वाणी का प्रसार करती है।

यह शब्द पुनः मन्त्र १-१६४-४१ में आया है। वहाँ कहा है—'गौरीः मिमाय'। अर्थात् सुन्दर स्त्रियाँ मिमाती हैं।

ये सब शब्द—मिमीते, मिमते, अमिमेत्, मिमाती और मिमाय—एक ही शब्द के भिन्न-भिन्न रूप हैं। शब्द है 'मिमत'। यह उन शब्दों में है जिनकी ध्वनि ही अर्थ है। अर्थात् 'मि-मि' करना, जैसे हिन्दी में शब्द है घिसटना, भिनभिनाना इत्यादि।

इस कारण हम मिमत के अर्थ करते हैं वाणी का वह रूप जो अव्यक्त है। अर्थात् कानों से सुनाई नहीं देता और शब्द मात्र ही है। इसका ठीक अर्थ ऋग्वेद के मन्त्र ८-१००-१०, ११ पढ़ने से विदित होगा। वहाँ स्पष्ट लिखा है कि वाणी ऊर्जा के रूप में प्रसारित हुई। इस प्रकार 'प्रति मिमीते' का अर्थ हो सकता है बार-बार मिमत करना, अर्थात् अव्यक्त शब्द करना।

हम समझते हैं कि यहाँ भाव यह है कि अविनाशी प्राण आदर्श के रूप में मन्त्र द्वारा छन्दों में गान करते हैं। अथवा इसका भाव यह भी हो सकता है कि अन्तरिक्ष का प्राण किसी प्रकार की वाणी जो कानों को सुनाई नहीं देती, में मिमता है।

मन्त्र को मन्त्र द्वारा का अभिप्राय है कि मन्त्र उस भाषा में, जिसको 'मिमत' शब्द से वर्णन किया है, कहे गये थे। मिमत की गयी वाणी में मन्त्र कहे गये। तदनन्तर इस वाणी द्वारा मानवी वाणी में दो पदों अथवा चार पदों में छन्द कहे गये। छन्द सात रूपों में थे।

वेद मन्त्र सात रूपों में कहे गये। ये सात प्रकार के छन्द हैं जो वैदिक छन्दों के नाम से विख्यात हैं। इन छन्दों को इन सात नामों से स्मरण किया जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(१) गायत्री (२) उष्णिका (३) अनुष्टुप (४) बृहति (५) पंक्ति (६) त्रिष्टुप (७) जगति।

वेद वाणी के विषय में ऋग्वेद के १०-१३०-४,५,६ मन्त्रों में यह कहा है कि जब हिरण्यगर्भ में दिव्य पदार्थ बने, तब ही वेदों के छन्द अन्तरिक्ष की भिन्न-भिन्न दिव्य शक्तियों को दिये गये और वे तब ही वेद गान करने लगे।

उस समय के गान को ही मिमत कहा गया है। इस वाणी में मन्त्रों को सुन ऋषियों ने उन मन्त्रों को मानवी वाणी में कहा।

इस भाव को ऋग्वेद ८-१००-१०,११ में भी कहा गया है। इन मन्त्रों के अर्थ हम भूमिका की द्वितीय कण्डिका में दे आये हैं। उन मन्त्रों में कहा है कि वाणी तेजस्विनी, निगूढ़ अर्थ युक्त देवताओं द्वारा चारों दिशाओं से ऊर्जा के रूप में बरसती है। इस वाणी का स्रोत परमात्मा ही है। इस दिव्य अर्थ-युक्त वाणी को प्रकट करते हैं देवता। देवता इसमें संलग्न हैं। वह ग्रहण की जाती है विद्वानों से और वे जन साधारण के लिए इसे कहते हैं।

हमारा यह मत है कि परमात्मा का ज्ञान अन्तरिक्ष की दिव्य शक्तियों द्वारा मिमता (नमूना उपस्थित करता) है। ऊर्जा की भाँति चारों ओर फैलता है और वह वेद ज्ञान मानवी वाणी द्वारा ऋषि हमें देते हैं।

अन्तरिक्ष के देवता वेदों का ऊर्जा के रूप में प्रसार कर रहे हैं। उन देवताओं का आश्रय कौन है?

जगता सिन्धुं दिव्यस्तभायद् रथंतरे सूर्यं पर्यपश्यत्।
गायत्रस्य समिधस्तिस्र आहुस्ततो मह्ना प्र रिरिचे महित्वा॥
(ऋ० १-१६४-२५)

द्युलोक में प्रकृति को सलिल माना है। (देखें प्रथम अध्याय, मन्त्र १०-१२९-३) और इस सलिल को उसी अध्याय के मन्त्र १०-१२९-१ में गहन और गम्भीर कहा है। बृहदारण्यक उपनिषद् में मूल रूप

पदार्थ—

(जगता) जगत् के द्वारा। (सिन्धुम्) समुद्र को। (दिवि) द्युलोक में। (अस्तभायत्) थामे हुए हैं। (रथन्तरे) रथ में अर्थात् सौर-मण्डल में। (सूर्यम्) सूर्य को। (पर्यपश्यत्) भली प्रकार देखता है।

(गायत्रस्य) गायत्र अर्थात् दिव्य शक्तियों की। (समिधः) यज्ञ में अग्नि प्रदीप्त करने की लकड़ियाँ। (तिस्र) तीन। (आहुः) कही जाती हैं। (ततः) उनसे। (मह्ना) बड़ा। (प्र रिरिचे) पृथक् है। (महित्वा) महान् होने से।
(ऋ० १-१६४-२५)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकृति की तुलना समुद्र से भी की है। वहाँ कहा है—

अहर्वा अश्वं पुरस्तान्महिमान्वजायत। तस्य पूर्वे समुद्रे योनी—

(बृहदा० १-१-२)

अर्थात्—अश्व (परमात्मा) के सामने महिमा रूप में दिन उत्पन्न हुआ। पूर्व काल में उसकी समुद्र में योनि थी। यहाँ जगत् रचना के पूर्व की बात कही है कि दिन (ब्रह्म दिन) समुद्र में से उत्पन्न हुआ।

इस मन्त्र में यह भी कहा है कि जैसे इस सलिल रूपी द्युलोक में परमात्मा जगत् को थामे हुए है वैसे ही सौर-मण्डल में सूर्य को थामे हुए है।

अतः द्युलोक है। उसमें जगत् है। जगत् में सौर-मण्डल है और उसमें सूर्य है। ये सब थमे हुए हैं परमात्मा से तीन समिधाओं (अर्थात् शक्तियों) के द्वारा। एक प्राण, दूसरे अग्नि और तीसरी वायु।

प्राण के विषय में पहले लिखा जा चुका है। अग्नि संगठन शक्ति है और वायु गति उत्पन्न करनेवाली शक्ति है। ये तीनों शक्तियाँ महान् हैं, परन्तु परमात्मा इससे भी महान् है।

गतिशील संसार को द्युलोक में थमे हुए देखते हैं, जगत् में सौर-मण्डल को थमा हुआ देखते हैं, सौर-मण्डल में सूर्य को थमा हुआ देखते हैं। ये तीन समिधाओं से अर्थात् तीन शक्तियों (प्राण, अग्नि तथा वायु) से थमे हुए हैं।

पूर्व के एक मन्त्र में कहा है कि नक्षत्र धुरी पर घूम रहे हैं। यहाँ कहा है कि इस धुरी में तीन शक्तियाँ हैं। प्राण, अग्नि और वायु। यहाँ यह स्मरण रखना चाहिए कि अग्नि से अभिप्राय केवल उस अग्नि से नहीं जो लकड़ी जलाने पर उत्पन्न होती है। वह भी अग्नि है, परन्तु अग्नि जो विश्व को धारण किये हुए है, वह शक्ति है जिसका प्रकटीकरण विद्युत, रासायनिक शक्ति ताप इत्यादि में होता है। वायु, पदार्थों में गति उत्पन्न करनेवाली शक्ति है जिससे पृथिवी, सूर्य, चन्द्र, तारागण इत्यादि चल रहे हैं। इसकी अभिव्यक्ति भू-आकर्षण, चुम्बकीय शक्ति इत्यादि से होती है। प्राण वह शक्ति है जो निर्माण कार्य में व्यापक रूप से कार्य करती है।

यों तो तीन शक्तियाँ एक ही हैं और इनको तेज कहा जाता है, परन्तु कार्य के विचार से इनके तीन नाम हैं।

वेद वाणी इन शक्तियों द्वारा ही प्रसारित हो रही थी। जहाँ यह लिखा है कि देवताओं द्वारा मन्त्र विस्तार पा रहे थे वहाँ इन शक्तियों से ही अभिप्राय है। यह प्रतीत होता है कि इस कारण यह मन्त्र लिखा गया है जिससे यह भ्रम न हो जाये कि ये जड़ पदार्थ ज्ञान देनेवाले हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसी विषय पर और भी कहा है—

उप ह्वये सुदुघां धेनुमेतां सुहस्तो गोधुगुत दोहदेनाम् ।
श्रेष्ठं सवं सविता साविषन्नोऽभीद्धो धर्मस्तदु षु प्र वोचम् ॥
(ऋ० १-१६४-२६)

जैसे कुशल हाथों से दूध दोहनेवाला अच्छा दूध देनेवाली गाय को पुकारता है, वैसे ही मैं वेदवाणी को पुकारूँ। वह वर्षा की भाँति चारों से ओर श्रेष्ठ ऐश्वर्य को देनेवाली है। चारों ओर से वह प्रकाशमान करती है। अभिप्राय यह कि वेदवाणी जिसका इस कण्डिका में प्रकरण चल रहा है, ऐश्वर्य देती है और ज्ञानवान करती है। मैं उस वाणी को अच्छी प्रकार से कहता हूँ।

इसका अभिप्राय यह है कि जैसे कुशल दूध दोहनेवाला गाय से दूध दोहकर तृप्त होता है वैसे ही बुद्धिमान विद्वान वेद वाणी का अर्थ लगाता है और वह अर्थ उसके ज्ञान में वृद्धि करनेवाला होता है। वेद वाणी का अर्थ समझने के लिये बुद्धिमान व्यक्ति होना चाहिये और उसे अर्थ जानने का ढंग आना चाहिये।

यह ऊपर बता चुके हैं कि द्युलोक के देवताओं को भिन्न-भिन्न छन्द गान करने के लिये मिले हुए हैं (ऋ० १०-१३०-४, ५)। पृथिवी पर ऋषिगण उनको सुन और उनका अर्थ समझ ज्ञानवान होते हैं।

इसी सम्बन्ध में और भी कहा है।

हिङ्कृण्वती वसुपत्नी वसूनां वत्समिच्छन्ती मनसाभ्यागात् ।
दुहामश्विभ्यां पयो अघ्न्येयं सा वर्धतां महते सौभगाय ॥
(ऋ० १-१६४-२७)

पदार्थ—

(उप ह्वये) पुकारता है। (सुदुघां) अच्छा दूध देनेवाली। धेनुम्) गाय को। (एताम्) इससे। (सुहस्तः) कुशल हाथोंवाला। (गोधुक) दूध दोहत हुआ। (उत्) और। (दोहत्) दोहकर। (एनाम्) इसको।

(श्रेष्ठम्) श्रेष्ठ। (सवम्) ऐश्वर्य को। (सविता) ऐश्वर्य के देनेवाली। (साविषत्) उत्पन्न करता है। (नः) हमारे लिये। (अमीद्धः) चारों ओर से प्रकाशमान। (धर्मः) वर्षा करता है। (तदु) उस। (षु प्रवोचम्) अच्छी प्रकार से कहता हूँ। (ऋ० १-१६४-२६)

पदार्थ—

(हिङ्कृण्वती) हुकारती है। (वसुपत्नी) वसुओं को पालनेवाला। (वसुनाम्) वसुओं को। (वत्सम्) सन्तानों को। (इछन्ती) चाहती है। (मनसा)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वसु के शाब्दिक अर्थ हैं—वसतीति, जो बसा हुआ है। अर्थात् प्राणी वसु है। प्राणियों का पालन करनेवाली को वसु-पत्नी कहा है। कुछ भाष्यकारों ने वसु पत्नी गाय को कहा है। कुछ का कहना है कि इससे पृथिवी का अभिप्राय है। पूर्वापर के प्रकरण का विचार करते हुए हमारा मत है कि यहाँ वसु-पत्नी का अभिप्राय वेद ज्ञान से ही है। वह भी अघ्न्या है और पृथिवी पर बसे हुए वसुओं को वह दूध की भाँति चारों ओर से प्राप्त होती है। दोनों प्रकार के मनुष्य, विद्वान् और अविद्वान्, इस वाणी से लाभ प्राप्त करते हैं। कारण यह कि इससे वे महान् वृद्धि को प्राप्त होते हैं और सौभाग्यवान होते हैं।

यह मन्त्र उस वेदवाणी के विषय में ही है, जिसे पूर्व के मन्त्रों (१-१६४-२३, २४, २५, २६) में कहा गया है। जो वाणी सात रूप में बतायी गयी है और द्युलोक से वर्षा की भाँति बरसती है।

वह वाणी पृथिवी पर बसे मनुष्यों का पालन करनेवाली है, उनकी महान् उन्नति करनेवाली है और सौभाग्य को देनेवाली है।

यहाँ कहा है कि दोनों प्रकार के प्राणियों का कल्याण करने वाली यह है। 'अश्विभ्याम्'। इसके अर्थ सूर्य और वायु भी किये गये हैं। स्थावर और जंगम सृष्टि से भी लिये जाते हैं। यहाँ हमारे विचार में दो प्रकार के मनुष्यों से ही अभिप्राय है। यदि इस मन्त्र को वेदवाणीपरक माना जाये तो इन दो से दो प्रकार के मनुष्य ही लाभ उठा सकते हैं, अन्य प्राणी नहीं।

अतः वेद भगवान् कहते हैं कि वह वेदवाणी पृथिवी पर बसे हुए उसके पुत्रों को उन्नति के लिये और उनको सौभाग्यवान करने के लिये चारों ओर से प्राप्त होती है।

ज्ञानवानों का यह ज्ञान से पालन करती है और अज्ञानियों को वह वाणी के शब्द प्रदान कर उनको सौभाग्यवान बनाती है। इसका अर्थ यह है कि सामान्य मनुष्यों को भी वाणी वेद से ही मिली है। इस कारण सामान्य मनुष्य भी वेदवाणी से सौभाग्यवान होते हैं।

मन से। (अभि-आ-आगात्) सब ओर से प्राप्त होती है।

(दुहाम्) दुहते हुए। (अश्विभ्याम्) दोनों प्रकार के प्राणी अर्थात् ज्ञानवान और अज्ञानी अथवा मनुष्य और इतर जीव-जन्तु। (पयः) दूध को। (अघ्न्या) मारने के अयोग्य। (इयम्) यह। (सा) वह। (वर्धताम्) उन्नति को प्राप्त होवे। (महते) महान्। (सौभगाय) सौभाग्य को।

(ऋ० १-१६४-२७)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनुस्मृति में लिखा है—

सर्वेषाँ तु स नामानि कर्माणि च पृथक्पृथक् ।
वेदशब्देभ्य एवाऽऽदौ पृथक्संस्थाश्च निर्ममे ।। (मनु० १-२१)

अर्थात्—उसने सबके नाम और कार्य पृथक्-पृथक् कहे हैं। आदि में वेदों के शब्दों द्वारा ही पृथक्-पृथक् ये निश्चय किये गये हैं।

इस प्रकार, मन्त्र में कहा है कि वेदवाणी हनन करने योग्य नहीं। इससे विद्वान् ज्ञान प्राप्त करते हैं और सामान्य मनुष्य सामान्य भाषा के शब्द प्राप्त करते हैं।

इस विषय में और अधिक कहा है—

गौरमीमेदनु वत्सं मिषन्तं मूर्धानं हिङ्कृणोन्मातवा उ ।
सृक्वाणं घर्ममभि वावशाना मिमाति मायुं पयते पयोभिः ।।
(ऋ० १-१६४-२८)

जैसे गाय आँखें झपकते हुए छोटे बछड़े को प्यार से सिर हिला-हिलाकर हुँकारती हुई और चाहती हुई (दूध का) सृजन करती है, माँ-माँ का शब्द करती है और पीने को दूध देती है, वैसे ही वेदवाणी उन मनुष्यों को जिनका जन्म पृथिवी पर हुआ है, प्यार से उनके कल्याण की कामना और सृजन करती हुई मिमाती है। वह ज्ञान रूपी दूध पृथिवी पर उत्पन्न हुए मनुष्यों को पिलाती है।

यह वेद का निर्विवाद मत है कि आदि मनुष्यों को परमात्मा ने वाणी द्वारा ज्ञान दिया और वह ज्ञान ही वेदवाणी है। इस मन्त्र में और पूर्व के मन्त्रों में गाय की उपमा वेदवाणी से दी गयी है। वेदवाणी से ही विद्वान ज्ञान प्राप्त करते हैं और सामान्यजन सामान्य वाणी प्राप्त करते हैं।

पदार्थ—

(गौः) गाय। (अमीमेत्) मिमियाते हुए। (अनु वत्सम्) छोटे बछड़े को। (मिषन्तम्) मूंदी आँखोंवाले को। (मूर्धानम्) सिर को। (हिङ्कृणोत्) प्यार से हुँकार करती हुई। (मातवा उ) माता के लिए पुकारते को।

(सृक्वाणम्) सृजन करती हुई। (घर्मम्) गरमी को: (अभि वावशाना) कामना करती हुई। (मिमाति) मिमती है। (मायुम्) वाणी प्रसिद्ध करती हुई। (पयेत) पान कराती है। (पयोभिः) पीनेवाले पदार्थ के साथ।
(ऋ० १-१६४ ४९)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अयं स शिङ्क्ते येन गौरभीवृता मिमाति मायुं ध्वसनावधि श्रिता ।
सा चित्तिभिर्नि हि चकार मर्त्यं विद्युद् भवन्ती प्रति वव्रिमौहत ।।
(ऋ० १-१६४-२९)

परमात्मा अव्यक्त ध्वनि करता है। अव्यक्त से अभिप्राय है जो इन्द्रियों से न जानी जा सके। यहाँ श्रवण इन्द्रिय से ही अभिप्राय है। वाणी का सम्बन्ध सुनने से है। अतएव यह कहा गया है कि परमात्मा की ध्वनि मानव कानों से सुनायी नहीं देती। अव्यक्त होने के कारण यह चारों ओर से ढकी हुई मिमियाती हुई बोलती है और अपने निवास स्थान पर स्थित हो जाती है। इसका अभिप्राय है कि वह अव्यक्त वाणी अपने चारों ओर से ढके हुए स्थान पर पहुँचती है और वहाँ स्थित हो जाती है। ढके हुए स्थान का अभिप्राय मनुष्य के मस्तिष्क में वह स्थान, जहाँ मन स्थित है। अर्थात् वह परमात्मा की वाणी कानों से तो सुनायी नहीं देती और मन में जा स्थित होती है। यह निवास स्थान ऊपर-नीचे से सुरक्षित है। निस्सन्देह यहाँ मस्तिष्क से अभिप्राय है।

इस और इससे पूर्व में आये मन्त्रों में 'मिमाति' शब्द आया है। यह वाणी के उस रूप के लिये ही है जिसमें यह बिना कानों से सुने मस्तिष्क में जा स्थापित होती है। इसका अर्थ मिमाति ही किया गया है। कारण यह कि वाणी के इस रूप को कान सुन नहीं सकते। अतः इसके लिये अन्य शब्द नहीं कहा गया।

यह वाणी अपनी ज्ञानयुक्त क्रियाओं से मनुष्य को निश्चय से ही शक्तिशाली ज्ञान से युक्त करती है और तब यह अपने रूप को प्राप्त होती है। इसका रूप वही है जो आज वेदवाणी का रूप है। अभिप्राय यह है कि शब्दों के वर्तमान उच्चारण बन जाते हैं।

वेद का स्पष्ट मत है कि सृष्टि-रचना में जिस समय अभी हिरण्यगर्भ का

पदार्थ—

(अयं) यह। (स) वह। (शिङ्क्ते) अव्यक्त ध्वनि करते हैं। (येन) जिससे। (गौः) वाणी। (अभीवृता) चारों ओर से ढकी हुई। (मिमाति) बोलती हुई। (मायुम्) मा-मा शब्द। (ध्वसना) अपने निवास स्थान में। (अवधि श्रिता) ऊपर नीचे से सुरक्षित।

(सा) वह। (चित्तिभिः) ज्ञानयुक्त क्रियाओं द्वारा। (नि हि चकार) निश्चय से ही करती है। (मर्त्यम्) मरण धर्मा मनुष्य को। (विद्युत) शक्ति। (भवन्ति) होते हुए। (प्रति) अपने। (वव्रिम्) रूप को। (औहत्) प्राप्त होती है। (ऋ० १-१६४-२९)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रूप ही बना होता है अर्थात् प्रकृति के परमाणुओं के गुणों की साम्यावस्था भंग होकर अहंकार महाभूत बन रहे होते हैं, उस समय ही वेद त्रयी विद्या के रूप में प्रकट होकर अन्तरिक्ष के भिन्न-भिन्न देवताओं को मिल जाती है। छन्दों के रूप में देवता इनका उच्चारण करने लगते हैं। गायत्री छन्द अग्नि से उष्णिक छन्द सूर्य से और अनुष्टुप छन्द सोम से स्रवित किया जाने लगा। बृहति छन्द बृहस्पति के द्वारा आविर्भाव होने लगा। विराट् छन्द वरुण और मित्र को मिले। इन्द्र को त्रिष्टुप छन्द मिला और अन्य सब देवताओं को जगति छन्द प्राप्त हुआ। (ऋ० १०-१३०-४, ५)। इन देवताओं से उच्चारण हो रहे छन्दों से ऋषि और मनुष्य सामर्थ्यवान (ज्ञानवान) हुए।

ये छन्द ऋषियों को वाणी के अव्यक्त अर्थात् न सुने जानेवाले रूप में मिले। ये उनके मस्तिष्क में बैठ गये और वहाँ से ज्ञानयुक्त क्रियाओं अर्थात् शब्दों की क्रिया (verbs) के रूप में प्रकट हुए और फिर सामान्य लोगों की भाषा के रूप में मनुष्यों को प्राप्त हुए।

: २ :

अब आगे जीवात्मा का शरीर में स्थित होने का वृत्तान्त है।

अनच्छये तुरगातु जीवमेजद् ध्रुवं मध्य आ पस्त्यानाम्।
जीवो मृतस्य चरति स्वधामिरमर्त्यो मर्त्येना सयोनिः॥

(ऋ० १-१६४-३०)

सृष्टि करनेवाला परमात्मा सर्वव्यापक है। वह जीव को तीव्र गति से चलाता हुआ शरीरों के मध्य में स्थिर करता है।

सृष्टि के आदि में परमात्मा ने जीवात्मा को शरीरों में स्थित करने के लिये तीव्र गति से चलाया। यहाँ कहा है 'शरीरों में'। इसका अर्थ है कि

पदार्थ—

(अनत्) सृष्टि करता हुआ। (शये) सर्वत्र व्यापक है। (तुरगात्) शीघ्र गमन को। (जीवम्) जीवात्मा को। (एजत्) चलाता हुआ। (ध्रुवम्) स्थिर करता हुआ। (मध्य) बीच में। (आ) चारों ओर से। (पस्त्यानाम्) शरीरों में।

(जीवः) जीवात्मा। (मृतस्य) मरनेवाले का। (चरति) चलाता है अथवा आचरण करता है। (स्वधामिः) प्रकृति द्वारा। (अमर्त्यो) न मरनेवाला। (मर्त्येना) मरण धर्मा के साथ। (सयोनिः) एक ही योनि में रहता है।

(ऋ० १-१६४-३०)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भिन्न-भिन्न जीवात्माओं को भिन्न-भिन्न शरीरों में स्थित किया। यह उन जीवों के साथ तब हुआ जब उनका जन्म अमैथुनीय ढंग से हुआ। परन्तु इसका अर्थ मैथुनीय सृष्टि के काल में भी लग सकता है। तब जीवात्मा दो शरीरों में स्थिर किया जाता है। माँ के शरीर के भीतर बन रहे सन्तान के शरीर में।

जीवात्मा मरनेवाले शरीर को चलाता है। इसका अभिप्राय यह है कि जीवात्मा उस शरीर को छोड़कर चला आता है, जो मर रहा है। मरनेवाले शरीर को छोड़कर जीवात्मा प्रकृति के सहयोग से अन्य मरनेवाले शरीर के साथ योनि में आ जाता है।

इस मन्त्र में दो बातें विशेष रूप से कही गयी हैं। एक यह कि जीवात्मा जब जन्म लेने लगता है तो चाहे तो उसका अमैथुनीय जन्म हो और चाहे मैथुनीय, दोनों अवस्थाओं में तीव्र गति से सर्वव्यापक परमात्मा से चलाया जाता है।

इसी बात को ब्रह्मसूत्र के एक सूत्र में इस प्रकार कहा गया है—

नातिचिरेण विशेषात् ॥ (ब्र० सू० ३-१-२३)

अर्थात्—विशेषता के कारण उसे एक योनि से दूसरी योनि में जाने में देर नहीं लगती।

दूसरी बात यह बतायी गयी है कि जीवात्मा प्रकृति के सहयोग से शरीरों में एक ही योनि में रहता है। शरीर और जीवात्मा एक ही योनि में रहते हैं। इसका अभिप्राय यह है कि गर्भाशय में जब शरीर बन ही रहा होता है तब ही जीवात्मा उस शरीर में पहुँच जाता है।

इस विषय में और भी कहा है—

अपश्यं गोपामनिपद्यमानमा च परा च पथिभिश्चरन्तम्।
स सध्रीचीः स विषूचीर्वसान आ वरीवर्ति भुवनेष्वन्तः॥
(ऋ० १-१६४-३१)

पदार्थ—

(अपश्यम्) देखता हूँ। (गोपाम्) सब की रक्षा करनेवाले को। (अनिपद्यमानम्) मन और इन्द्रियों को न प्राप्त होनेवाले को। (आ च परा च) आगे से और पीछे से। (पथिभिः) मार्गों द्वारा। (चरन्तम्) चलनेवाले को।

(स) वह। (सध्रीचीः) साथ प्राप्त होती हुई गतियों को। (स) वह। (विषूचीः) नाना प्रकार की गतियों को। (वसानः) धारण करता हुआ। (आ वरीवर्ति) धारण करता हुआ। (भुवनेषु) भवनों में। (अन्तः) में।

(ऋ० १-१६४-३१)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैं देखता हूँ, का अभिप्राय यह है कि संसार को गम्भीरता पूर्वक देखने वाला और देखे पर विचार करने वाला यह जान पाता है कि एक है जो सबका पालन करनेवाला है और जो मन तथा इन्द्रियों को प्राप्त होनेवाला नहीं है। अभिप्राय यह है कि जो इस जगत् की रक्षा और पालन करने वाला है, वह शरीर धारण नहीं करता, जीवात्मा की भाँति वह शरीर में नहीं जाता।

पूर्वोक्त मन्त्र (१-१६४-३०) में बताया है कि जीवात्मा शरीर को प्राप्त होता है उसी समय जब शरीर अभी योनि में बन रहा होता है। यहाँ कहा है कि पालन तथा रक्षा करनेवाला शरीर को प्राप्त नहीं होता।

अभिप्राय यह है कि परमात्मा मनुष्य शरीर में नहीं आता। जो लोग कहते हैं कि परमात्मा मनुष्य के रूप में अवतार लेता है, वे वेदमत के विपरीत कहते हैं।

पूर्व के मन्त्र में यह भी कहा है कि परमात्मा जीवात्मा की द्रुत गति से एक योनि से दूसरी योनि में ले जाता है। जीवात्मा अनेक मार्गों से चलता हुआ अनेक गतियों को प्राप्त होता है। इसका अर्थ है कि वह अनेक प्रकार के जन्मों को प्राप्त होता है।

'आगे से और पीछे से प्राप्त होता है' का अर्थ यह है कि नीचे की योनियों से मनुष्य योनि को प्राप्त होता है अथवा ऊपर के लोकों से मानव योनि में आता है। नाना प्रकार की गतियों को प्राप्त होता हुआ लोकों को प्राप्त होता है। 'लोकों' का अर्थ है, अन्य नक्षत्रों पर हो रही सृष्टि।

एक व्यक्ति कैसे इन दोनों, परमात्मा और जीवात्मा, को इस जगत् में देखता है ? यह बताना दर्शन का विषय है।

दर्शन बताता है 'जन्माद्यस्य यतः' जन्मादि जिससे होता है, वह परमात्मा है। अभिप्राय है यह कि बिना किसी शक्तिमान चेतन के सृष्टि रचना नहीं हो सकती।

इसी प्रकार जीवात्मा के विषय में लिखा है कि मृत और जीवित शरीर में अन्तर किसी चेतन के न होने और होने में ही है। साथ ही जीवात्मा और परमात्मा दोनों सुपर्णा अर्थात् चेतन हैं (१-१६४-२०)। परन्तु एक ज्ञानवान है और दूसरा अज्ञ है। एक ईश (सामर्थ्यवान) है और दूसरा अनीश (अल्प सामर्थ्य वाला) है।

इस मन्त्र में जीवात्मा और परमात्मा में अन्तर बताया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

य ईं चकार न सो अस्य वेद य ईं ददर्श हिरुगिन्नु तस्मात् ।
स मातुर्योना परिवीतो अन्तर्बहुप्रजा निर्ऋतिमा विवेश ॥
(ऋ० १-१६४-३२)

जीवात्मा के विषय में यह भी लिखा है कि जीवात्मा छोटे-छोटे कामों में लगा होने से नहीं जानता कि वह (जो ऊपर के १-१६४-३१ मन्त्र में सबका पालन करनेवाला कहा गया है) कौन है? क्योंकि वह (परमात्मा) निश्चय रूप में उस से छुपा हुआ है जो छोटी-छोटी तुच्छ वस्तुओं को देखता है।

वह बार-बार माता की योनि में आता है। वहाँ सब ओर से ढका हुआ है और माँ के पेट में बहुत कष्ट पाता है।

यहाँ जीवात्मा को सांसारिक तुच्छ बातों में लिप्त और उनकी ओर ध्यान लगानेवाला कहा है। इसी कारण उसे अज्ञानी कहा है।

मन्त्र में शब्द है "ईम्"। इसका अर्थ है "छोटी-छोटी बातें।" परमात्मा महान् है। इस कारण जो तुच्छ रसों के पीछे लगा रहता है, वह उस महान् को नहीं जान सकता।

जीवात्मा को "अज्ञ" और "अनीश" माना है और परमात्मा को "ज्ञ" और "ईश" कहा है।

परमात्मा और जीवात्मा दोनों को छुपा हुआ माना है। साथ ही यह कहा जा चुका है कि परमात्मा महान् है। उसके विषय में ब्रह्मसूत्र में लिखा है—

अक्षरमम्बरान्तधृतेः ॥ (ब्र० सू० १-३-१०)

अर्थात्—वह अक्षर जो अम्बर के अन्त तक धारण करता है, वह परमात्मा है।

जीवात्मा तो केवल शरीर को ही धारण करता है। इसमें रहता हुआ भी

पदार्थ—

(य) जो। (ईम्) ये तुच्छ। (चकार) रचना करता है। (न) नहीं। (सः) वह। (अस्य) इसको। (वेद) जानता। (य) जो। (ईम्) इन तुच्छ। (ददर्श) देखता है। (हिरुक इत्) छुपा हुआ है यह। (नु) निश्चय से। (तस्मात्) उससे।

(स) वह। (मातुः) माता की। (योना) योनि में। (परिवीतः) सब ओर से ढका हुआ। (अन्तः) बीच में। (बहु) बहुत। (प्रजाः) जन्म लेने वाला। (निर्ऋतिम्) कष्ट को। (आ विवेश) प्राप्त होता है।

(ऋ० १-१६४-३२)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसकी शक्ति सीमित है। इसी कारण कहा है कि जो तुच्छ कार्य करता है और छोटी-छोटी हानि-लाभ की बातों को देखता है, वह परमात्मा को नहीं जानता। देखने का अर्थ यह नहीं कि उससे मोह करने लगे।

द्यौर्मे पिता जनिता नाभिरत्र बन्धुर्मे माता पृथिवी महीयम्।
उत्तानयोश्चम्वो३र्योनिरन्तरत्रा पिता दुहितुर्गर्भमाधात्॥
(ऋ० १-१६४-३३)

परमात्मा के विषय में इस पृथिवी पर प्राणी सृष्टि का वर्णन करते हुए वेद में कहा गया है कि सूर्य पिता है। उसमें उत्पादन शक्ति है। पृथिवी माता है और उसमें गर्भ धारण करने की सामर्थ्य है। सूर्य प्राणी सृष्टि का (नाभिः) आधार है। पृथिवी यह महान् कार्य करती है कि सूर्य के तेज रूपी बीज को ग्रहण करती है।

सूर्य और पृथिवी जिन पर स्थित है, वह परमात्मा है। यह दोनों के बीच में स्थित है। वह इन दोनों का पिता है। पृथिवी रूपी लड़की को वह गर्भ धारण करने की सामर्थ्य देता है।

वेद के कथनानुसार सूर्य में उत्पादन शक्ति और पृथिवी में गर्भ धारण करने की शक्ति परतात्मा देता है, जो सबके ऊपर अर्थात् सब पर नियंत्रण रखनेवाला है। स्वेदज, उद्भिज, अण्डज और जेरज चारों प्रकार के प्राणियों को उत्पन्न करने की सामर्थ्य परमात्मा की दी हुई ही है।

वैसे तो यह बात वर्तमान युग के वैज्ञानिक भी मानते हैं कि पृथिवी पर नाईट्रोजन (nitrogen) ऑक्सीजन (oxygen) हाईड्रोजन (hydrogen) और कार्बन (carbon) के जटिल अणुओं का निर्माण सूर्य की किरणों और पृथिवी पर के पदार्थों से ही होता है। परन्तु जो बात वेद में विशेष कही गयी है

पदार्थ—

(द्यौः) सूर्य। (मे) मेरा। (पिता) पिता है। (जनिता) उत्पादक। (नाभिः) केन्द्र। (अत्र) यहाँ। (बन्धु) बन्धु समान। (मे) मेरी। (माता) माता समान। (पृथिवी) पृथ्वी। (महि) महान है। (इयम्) यह।

(उत्तानयोः) उच्च स्थान पर स्थापित। (चम्बोः) दो के भीतर स्थित। (योनि) उद्गम स्थान। (अन्तः) बीच का। (अत्र) यहाँ। (पिता) पिता। (दुहितुः) कन्या समान। (गर्भम्) गर्भ धारण की सामर्थ्य को। (आधात्) प्रदान करता है।

(ऋ० १-१६४-३३)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह यह है कि सरल से जटिल अणुओं का निर्माण बिना परमात्मा की प्रेरणा के नहीं होता और वह एक चेतन तत्त्व होने के कारण ईक्षण करने की सामर्थ्य रखता है। अभिप्राय यह कि कार्य आरम्भ करने के काल का निश्चय करना (decision), कार्य दिशा निश्चित करना (direction) और कार्य को समाप्त करने अथवा न करने का निश्चय करने की सामर्थ्य (discretion) एक चेतन में ही होती है। अतः यह परमात्मा की शक्ति से ही हो सकता है।

सृष्टि रचना के विषय में यह कहा है कि यह सामर्थ्य परमात्मा के अतिरिक्त अन्य किसी में भी नहीं। वर्तमान वैज्ञानिकों के मत और वेद मत में अन्तर यहीं से आरम्भ होता है। आगे रचना-कार्य के अन्य अंगों में भी अन्तर है। वह आगे चलकर लिखेंगे।

यहाँ इतना ही स्पष्ट करने से अभिप्राय है कि चारों प्रकार के प्राणियों की सृष्टि सूर्य और पृथिवी से होती है और इन पर नियन्त्रण है परमात्मा का। वह पृथिवी को वैसे ही गर्भ धारण करने की सामर्थ्य देता है, जैसे पिता कन्या को यह सामर्थ्य देता है। परमात्मा सूर्य को बीजारोपण की सामर्थ्य इसी प्रकार देता है जैसे कि पिता पुत्र को देता है।

पृच्छामि त्वा परमन्तं पृथिव्याः पृच्छामि यत्र भुवनस्य नाभिः।
पृच्छामि त्वा वृष्णो अश्वस्य रेतः पृच्छामि वाचः परमं व्योम॥
(ऋ० १-१६५-३४)

जगत् को देखकर दो प्रश्न (ऋ० १०-१३० में) पूछे गये थे। किसने जगत् की रचना की है और किसने प्राणी की सृष्टि की है? वहाँ इन प्रश्नों का उत्तर दिया गया था कि यह परमात्मा है। अब यहाँ चार प्रश्न किये हैं (१) पृथिवी का अन्त कहाँ है? (२) सब भुवनों (लोकों) का आश्रय स्थान कहाँ है? (३) इस जगत् को जो वेग से चलानेवाला है वह कहाँ और कौन है? (४) वाणी

पदार्थ—

(पृच्छामि) पूछता हूँ। (त्वा) तुमसे। (परमन्तम्) परम अन्त को। (पृथिव्याः) पृथिवी के। (पृच्छामि) पूछता हूँ। (यत्र) जहाँ। (भुवनस्य) भवनों अर्थात् लोकों का। (नाभिः) आश्रय स्थान है।

(पृच्छामि) पूछता हूँ। (त्वा) तुमसे। (वृष्णो) बलवान्। (अश्वस्य) अश्व के अर्थात् वेग से खींचकर ले जानेवाले के। (रेतः) वीर्य अथवा सामर्थ्य के विषय में। (पृच्छामि) पूछता हूँ। (वाचः) वाणी के विषय में। (परमं) महान्। (व्योम) आकाश में जो स्थित है। (ऋ० १-१६४-३४)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(वेदवाणी जिससे सब बोलियों का आविर्भाव हुआ है।) जो महान् अवकाश (space) में स्थित है, वह कहाँ से आती है ?

इन चारों प्रश्नों का उत्तर अगले मन्त्र में दिया है।

इयं वेदिः परो अन्तः पृथिव्या अयं यज्ञो भुवनस्य नाभिः।
अयं सोमो वृष्णो अश्वस्य रेतो ब्रह्मायं वाचः परमं व्योम ॥
(ऋ० १-१६४-३५)

पूर्व मन्त्र १-१६४-३४ में पूछे गये प्रश्नों का उत्तर इस मन्त्र में दिया गया है।

(१) प्रथम प्रश्न था कि पृथिवी का अन्त क्या है ? यहाँ पृथिवी से वह गोलाकार नक्षत्र भी हो सकता है जिस पर हम बसे हुए हैं। कुछ विद्वानों ने इसका अर्थ जगत् किया है। महर्षि स्वामी दयानन्द ने इसका अर्थ भूमि किया है। हमारा विचार है कि यहाँ भूमि से ही पृथिवी का अभिप्राय है। पूर्व के मन्त्रों में पृथिवी को प्राणियों की जननी बताया है। वहाँ भी पृथिवी से अभिप्राय भूमि ही है। भूमि ही सबकी जननी है।

इस मन्त्र में कहा है कि भूमि का अन्त है यज्ञ भूमि का स्थान। अर्थात् जब तक सृष्टि रचना का यज्ञ होता रहेगा तब तक भूमि की सामर्थ्य समझी जायेगी और सृष्टि रचना समाप्त होने पर भूमि का अन्त समझना चाहिए।

(२) दूसरा प्रश्न है: लोक का आश्रय स्थान क्या है ? यहाँ भुवन एक वचन में है। अतः लोक-लोकान्तर से अभिप्राय नहीं है। इस पृथिवी पर हो रही सृष्टि को ही लोक कहा है। इसके आश्रय का अभिप्राय यह है कि किसके आश्रय यह सृष्टि रचना चल रही है ? आरम्भ में तो सूर्य और पृथिवी से प्राणी-रचना हुई थी और तदनन्तर माता-पिता के आश्रय हो रही है। माता की सामर्थ्य कहाँ से आती है ? वह सृष्टि रचना का आश्रय कहा जायेगा।

पदार्थ—

(इयं) यह। (वेदिः) यह स्थान। (परः) परम महान्। (अन्तः) अन्त है। (पृथिव्या) पृथिवी का। (अयं) यह। (यज्ञः) यज्ञ। (भुवनस्य) भुवन की। (नाभिः) आश्रय है।

(अयं) यह। (सोमः) सूर्य। (वृष्णः) बलवान। (अश्वस्य) खींचकर ले जानेवाले का। (रेतः) बल है। (ब्रह्म) महान परमात्मा। (अयं) वह। (वाचः) वेदवाणी। (परमम्) महान्। (व्योम) आकाश अर्थात् आश्रय है।
(ऋ० १-१६४-३५)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

माता पिता से सन्तान, तदनन्तर उसकी सन्तान, सन्तान की सन्तान, यह चक्र चलता आ रहा है। प्रश्न का आशय यह है कि इसका आश्रय कौन है? जैसे चक्र की नाभि होती है वैसे ही इस सन्तान चक्र की नाभि (आश्रय) कौन है? उत्तर है कि यज्ञ ही इसका आश्रय स्थान है। यज्ञ का अभिप्राय है कि लोक कल्याण के लिए सन्तानोत्पत्ति समझने से यह सन्तान चक्र चलेगा। जब और जहाँ सन्तान उत्पत्ति समाज के हित में समझनी बन्द हो जायेगी अर्थात् यह कर्म केवल वासना के निमित्त रह जायेगा, तब लोक का अन्त होगा।

यह कैसे होगा? जब और जिन जातियों में यौन क्रिया केवल वासना तृप्ति के अर्थ ही रह जायेगी, वहाँ मनुष्यों, परिवारों, समुदायों अथवा जातियों में लोक सृष्टि बन्द हो जायेगी। जन घटकों, परिवारों, समुदायों और जाति में जब तक सन्तान चक्र चलाने के लिए यह कार्य किया जाता रहेगा तब तक लोक स्थित रहेगा। जब तक और जहाँ-जहाँ यज्ञ भूमि (वेदी) रहेगी और वहाँ प्राणियों में यज्ञ की भावना से सन्तान उत्पत्ति की जायेगी तब तक वहाँ लोक (प्रजायें) बने रहेंगे।

(३) तृतीय प्रश्न है कि समस्त लोक उत्पत्ति के लिए रेतस् (बीज) कहाँ से आता है? उत्तर में कहा कि "सोम" से। सोम का अर्थ सूर्य है। जब तक सूर्य रहेगा तब तक माता-पिता में रेतस् बनता रहेगा। रेतस् से अभिप्राय पुरुष बीज (sperm) और स्त्री के अण्ड (ovum) दोनों से है। ये दोनों सूर्य से ही बनते हैं।

इनके बनने की प्रक्रिया यह है। ये दोनों जीवित कोशिकाएँ (living cells) पुरुष और स्त्री के विशेष स्थानों में बनती हैं। देखने में ये शरीर की अन्य कोशिकाओं (living cells) के समान ही होती हैं, परन्तु इनमें कुछ विशेषता होती है जो सामान्य कोशिकाओं में नहीं होती। यह विशेषता किससे बनती है? प्रश्न यही किया गया है। वेद का उत्तर है कि सोम से। सोम, सूर्य की किरणों में एक विशेष प्रकार की किरणों का नाम है। वे किरणें अन्त में और जन्तुओं में इन (germ cells) उत्पत्ति-कारक कोशिकाओं का निर्माण करती हैं।

पृथिवी और सूर्य की सृष्टि पूर्व मन्त्र (१-१६४-३३) में बतायी गयी है। वहाँ कहा है कि सूर्य का पिता परमात्मा है। इसी कारण एक अन्य मन्त्र (१-१६४-१६) में परमात्मा को सबका पितामह कहा है। अभिप्राय स्पष्ट है कि सूर्य पिता है और पृथिवी माता है और इन दोनों में उत्पादन शक्ति निर्माण करनेवाला परमात्मा है। अतः सब प्राणियों का पितामह परमात्मा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(४) अन्तिम प्रश्न है कि वेदवाणी जो आकाश में स्थित है, वह कहाँ से आती है ? व्योम आकाश अथवा परमात्मा को भी कहते हैं। अतः वह ही वेद वाणी का स्रोत माना जाता है। ब्रह्मसूत्र में कहा है—

शास्त्रयोनित्वात्। (ब्र० सू० १-१-३)

जो ज्ञान का उद्गम स्थान है, वह परमात्मा है। मन्त्र ऋ० १-१६४-२४, २५, २६, २७ और २८) में इस विषय पर व्याख्या से कहा गया है।

: ४ :

पूर्वोक्त मन्त्रों (१-१६४-३० से ३५) में जीवात्मा के शरीर में स्थित होने और उसकी सामर्थ्य के विषय में बताया गया है। यह कहा है कि पिता सूर्य और माता पृथिवी से शरीर का निर्माण होता है और उस शरीर में जीवात्मा आ जाता है। तदनन्तर परमात्मा की सामर्थ्य से ही उनमें सब प्रकार की सामर्थ्य आती है।

अब आगे यह बताया है कि वह सामर्थ्य कब और कैसे आती है ?

सप्तार्धगर्भा भुवनस्य रेतो विष्नोस्तिष्ठन्ति प्रदिशा विधर्मणि।
ते धीतिभिर्मनसा ते विपश्चितः परिभुवः परि भवन्ति विश्वतः ॥
(ऋ० १-१६४-३६)

आधे गर्भ की अवस्था में ही सात प्राण परमात्मा की सामर्थ्य से विशेष नियम से और विशेष धर्मों के कारण ठहरते हैं।

वे विचार से बुद्धियों द्वारा विशेष ज्ञान प्राप्त विद्वान समस्त रूप से विनीत हो जाते हैं।

'आधे गर्भ की स्थिति में' के दो अर्थ हो सकते हैं। जब तो जगत् परक अर्थ

पदार्थ—

(सप्त) सात। (अर्धगर्भा) आधे गर्भ की स्थिति में। (भुवनस्य) भुवन का। (रेतः) वीर्य अथात् सामर्थ्य। (विष्णोः) व्यापक परमात्मा का। (तिष्ठन्ति) ठहरते हैं। (प्रदिशा) विशेष आज्ञा से। (विधर्मणि) विशेष धर्म के कारण।

(ते) वे। (धीतिभिः) बुद्धियों द्वारा। (मनसा) मन से अर्थात् विचार से। (ते) वे। (विपश्चितः) विशेष ज्ञान प्राप्त विद्वान। (परिभुवः) सब ओर से। (परिभवन्ति) तिरस्कृत अथवा परिणय हो जाते हैं। (विश्वतः) समस्त रूप ले।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करें तो आधे हिरण्यगर्भ की स्थिति में अभिप्राय लिया जायेगा। तब अर्थ यह बनेगा कि हिरण्यगर्भ में जब सात नक्षत्र अभी आधे ही बने होते हैं तब ही उनमें सामर्थ्य उत्पन्न हो जाती है। वह सामर्थ्य परमात्मा द्वारा प्राप्त होती है। इस सामर्थ्य से भुवनों में सात प्राण कार्य करने लगते हैं।

अर्ध गर्भ के अर्थ प्राणी पूरक भी हो सकते हैं। प्राणी जब गर्भ में आधा ही निर्मित होता है तब ही उसमें परमात्मा की शक्ति अर्थात् सात प्राण आ जाते हैं और अपने विशेष धर्मों के अनुसार कार्य करने लगते हैं।

दोनों अवस्थाओं में, अभिप्राय यह कि हिरण्यगर्भ में भुवनों की सामर्थ्य देखें अथवा प्राणी के विषय में गर्भ की अवस्था में देखें, यह इतनी चमत्कारिक है कि विशेष ज्ञान रखनेवाले विद्वान भी इसको मन से विचार कर नत मस्तक हो जाते हैं और परमात्मा की इस कारीगरी को देख चकित रह जाते हैं।

यह सामर्थ्य जो सात प्राणों से प्रकट होती है, यह आधे गर्भ की अवस्था में ही प्राणी में अथवा आधे हिरण्यगर्भ की अवस्था में भुवनों में आनी आरम्भ हो जाती है।

यह ऊपर बताया जा चुका है कि जगत् में सात प्राण हैं। ये प्राण हैं : पाँच तन्मात्राएँ, अग्नि और वायु। प्राणी की अवस्था में प्राण हैं पाँच ज्ञानेन्द्रियों के प्राण, एक कर्मेन्द्रियों का प्राण और धमनियों में तथा अन्य नाड़ियों में कार्य करनेवाला प्राण। यह सातवाँ प्राण है।

ये प्राणी को तथा भुवनों को आधे गर्भ की अवस्था में ही प्राप्त हो जाते हैं।

न वि जानामि यदिवेदमस्मि निण्यः संनद्धो मनसा चरामि।
यदा मागन् प्रथमजा ऋतस्यादिद् वाचो अश्नुवे भागमस्याः॥
(ऋ० १-१६४-३७)

पदार्थ—

(न) नहीं। (वि जानामि) विशेषता से जानता हूँ। (यत्) जो। (इव) तरह (इदम्) इसमें। (अस्मि) हूँ। (निण्यः) भीतर स्थित। (संनद्धो) बंधा हुआ। (मनसा) मन से। (चरामि) विचारता हूँ।

(यदा) जब। (मा) मुझे। (अगन्) प्राप्त होता है। (प्रथमजा) प्रथम उत्पन्न हुआ। (ऋतस्य) सत्य का। (आत्-इत्) तभी यह। (वाचः) वाणी। (अश्नुवे) प्राप्त करता हूँ। (भागम्) भाग को। (अस्याः) उसका।
(ऋ० १-१६४-३७)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राणी की अवस्था में जीवात्मा जो प्राणी में आता है, उस विषय में कहा गया है कि मैं, जो भीतर छुपा हुआ हूँ, कहता हूँ कि मैं इस तरह यह जो मन से बँधा हुआ, विचारता हूँ, मैं नहीं जानता।

जब मुझे आरम्भ में सत्य ज्ञान (वेद ज्ञान) प्राप्त हुआ था तभी यह वाणी प्राप्त हुई थी।

जीवात्मा जो गर्भ में आकर स्थित होता है, वह नहीं जानता कि वह क्या है, कहाँ से आया है और क्यों आया है ?

प्रथम जन्म के समय अर्थात् जब सृष्टि में प्रथम प्राणी बना था तब वाणी प्राप्त हुई थी जो वेदवाणी का एक भाग ही है।

जीवात्मा गर्भ में आने के समय नहीं जानता कि वह क्या है और क्यों है ? यह ज्ञान उसे उस वेदवाणी से मिलता है जो सृष्टि के आरम्भ में मनुष्य को मिली थी।

उस वेदवाणी के भाव, सामान्य वाणी को जानकर जीवात्मा जान जाता है कि उसका इस सृष्टि में आने का प्रयोजन क्या है।

इस मन्त्र का अर्थ यह है कि जीवात्मा प्राणी के रूप में आने का अभिप्राय वेद से ही जानता है। क्या जानता है ? यह इस प्रकार वर्णन किया गया है।

अपाङ् प्राङेति स्वधया गृभीतो ऽमर्त्यो मर्त्येना सयोनिः।
ता शश्वन्ता विषूचीना वियन्ता न्य१न्यं चिक्युर्न नि चिक्युरन्यम्॥
(ऋ० १-१६४-३८)

यह कहा है कि जीवात्मा प्रकृति के साथ अर्थात् शरीर के साथ सम्बद्ध होकर अथवा शरीर में जन्म लेकर नीचे की योनियों में जाता है अथवा ऊपर की योनियों में आता है। अभिप्राय यह कि लोकों में जाता है। वह अर्थात्

पदार्थ—

(अपाङ्) नीचे को (लोकों को)। (प्राङ) उपर को (लोकों को)। (एति) प्राप्त होता है। (स्वधया) प्रकृति के भाथ। (गृभीतो) सम्बद्ध होकर। (अमर्त्यो) अमर धर्मा अभिप्राय जीवात्मा। (मर्त्येना) मरणशील अर्थात् देह को। (सयोनिः) एक स्थान वाला हो रहा हूँ।

(ता) वे दोनों। (शश्वन्ता) सनातन। (विषूचीना) सर्वत्र जाने वाले। (वियन्ता) नाना गति करनेवाले। (नि-अन्यम्) निरन्तर दूसरे को। (चिक्युर्ण) जान पाता है। (नि चिक्युः अन्यम) दूसरे को नहीं जान पाता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीवात्मा जो अविनाशी है, नाशवान् देह के साथ एक ही योनि में स्थित होता है।

वे दोनों सनातन, सर्वत्र जाने वाले तथा नाना गतियों को प्राप्त होने वाले निरन्तर दूसरे को जान पाते हैं और एक अन्य है, उसे नहीं जान पाते।

इसका भावार्थ यह है कि जीवात्मा इस (प्राणी) के जन्म में इस कारण आता है कि जन्म में आकर इसे जीवों के लोकों में जाने का अवसर मिलता है अथवा ऊपर की योनियों में जाने का। नीचे और ऊपर से निकृष्ट और श्रेष्ठ का अभिप्राय है। मनुष्य योनि से नीचे अर्थात् निकृष्ट योनियाँ भी हैं और मनुष्य लोक से ऊपर के लोक हैं पितृलोक अथवा देवलोक।

ये श्रेष्ठ और निकृष्ट योनियाँ कैसे प्राप्त होती हैं ? इसके विषय में वेदान्त दर्शन में इस प्रकार कहा गया है—

सुकृतदुष्कृते एवेति तु बादिरः ॥ (ब्र० सू० ३-१-११)

वादरि आचार्य का कहना है कि अच्छे अथवा बुरे कर्म ही लोक-गमन में कारण हैं।

वेद में एक अन्य स्थान पर इस प्रकार लिखा है—

उद्यानं ते पुरुष नावयानं जीवातुं ते दक्षतातिं कृणोमि।
आ हि रोहेममृतं सुखं रथमथ जिर्विविदथमा वदासि ॥

(अथर्व० ८-१-६)

अर्थात्—हे पुरुष ! तेरी उन्नति हो, अवनति न हो। तेरे जीवन को मैं (परमात्मा) बलयुक्त करता हूँ। तू इस जीवन रूपी रथ में पूर्ण जीवन का सुख भोगकर बुढ़ापे के समय अपने जीवन का उद्देश्य पूर्ण कर।

जीवात्मा को यह देह मिलती है जिससे वह कर्म करता है और उन कर्मों के अनुसार श्रेष्ठ अथवा निष्कृष्ट योनियों को जाता है।

यह कैसे जानें कि कौन कर्म श्रेष्ठ हैं ?

ऋचो अक्षरे परमे व्योमन् यस्मिन् देवा अधि विश्वे निषेदुः।
यस्तत्र वेद किमृचा करिष्यति य इत् तद् विदुस्त इमे समासते ॥

(१-१६४-३९)

पदार्थ—

(ऋचः) वेदों से प्रतिपादित विषय। (अक्षरे) नाश रहित। (परमे) उत्तम में। (व्योमन्) आकाश में। (देवा) दिव्य पदार्थ। (अधि विश्वे) संसार में। (निषेदुः) स्थित है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मन्त्र १-१६४-३७ में कहा था कि जब जीवात्मा को मन से जोड़ा गया तब ज्ञान और वाणी मिली। इस पर भी जीवात्मा भीतर बैठा नहीं जानता कि वह इसमें क्यों है ? इससे अगले मन्त्र (१-१६४-३८) में यह कहा था कि जीवात्मा को शरीर मिला है ऊपर उठने के लिए अथवा नीचे की योनियों में जाने के लिए। अब इस मन्त्र १-१६४-३९ में यह बताया है कि उत्क्रमण अर्थात् ऊपर के लोकों में कैसे जाया जा सकता है।

यह कहा है कि वेद ज्ञान नाशरहित है और ज्ञान परम व्योम के दिव्य पदार्थों में स्थित है। जो यह नहीं जानता कि ऋचायें (वेद ज्ञान) क्या कहती हैं, वे लोग अपने विषय में नहीं जानते और जो वेद ज्ञान को जानते हैं, वे लोग मोक्ष पद पा जाते हैं। अर्थात् ऊपर के लोकों को जाते हैं।

अभिप्राय यह है कि वेद में मनुष्य को ऊपर की योनियों में जाने के उपाय बताये हैं। उदाहरण के रूप में यजुर्वेद का एक मन्त्र है—

ऊर्ध्वो भव प्रति विध्याध्यस्मदाविष्कृणुष्व दैव्यन्यग्ने·····

(यजु० १३-१३)

अर्थात्—हे तेजस्वी विद्वान पुरुष ! आप श्रेष्ठ (धर्म परायण) बनो और दुष्ट जनों को ताड़ना दो।

इसी वेदवाणी के विषय में और भी कहा है—

सूयवसाद् भगवती हि भूया अथो वयं भगवन्तः स्याम।
अद्धि तृणमघ्न्ये विश्वदानीं पिब शुद्धमुदकमाचरन्ती ॥

(ऋ० १-१६४-४०)

(यः) जो। (तत्) उस (वेद विषय) को। (न) नहीं। (वेद) जानता। (किम्) क्या। (ऋचा) ऋचायें। (करिष्यिति) करेंगी। (य) जो। (इत् तद्) इसे उस प्रकार। (विदुः) जान लेता है। (ते) वे। (इमे) ये लोग। (समा-(ते) मोक्ष में स्थान पाते हैं। (ऋ० १-१६४-३९)

पदार्थ—

(सूयवसात्) सुन्दर सुखों को भोगने वाली। (भगवती) अति ऐश्वर्य वाली। (हि) निश्चय से। (भूया) हो। (अथो) इसके अनन्तर। (वयम्) हम। (भगवन्तः) ऐश्वर्यवान्। (स्याम्) हों।

(अद्धि) खाने वाली। (तणम्) तिनकों को। (अघ्न्ये) मारने योग्य नहीं। (विश्वदानीम्) सबको सदा देने वाली का। (पिब) पियो। (शुद्धम्) पवित्र। (उदकम्) जल को। (आचरन्ती) व्यवहार करती हुई। (ऋ० १-१६४-४०)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वेदवाणी सुखों को भोगनेवाली अति ऐश्वर्यवती यह निश्चय से होवे। अर्थात् यह वेदवाणी निश्चय से अति ऐश्वर्य और सुन्दर सुखों को देने वाली है। इसको ग्रहण करनेवाले हम मनुष्य ऐश्वर्यवान हों। जैसे तिनके खाकर और जल पीकर दूध देने वाली गाय मारने योग्य नहीं, इसी प्रकार सामान्य परिश्रम से प्राप्त वाणी शुद्ध दूध की भाँति ज्ञान पीने को देती है और व्यवहार करने की प्रेरणा देती है। वह भी मारने योग्य नहीं।

मारने योग्य नहीं से अभिप्राय है कि वेदवाणी छोड़ने योग्य नहीं। यह ऐतिहासिक तथ्य है कि जिन-जिन जातियों ने अपनी भाषा वेदवाणी से भिन्न स्वीकार की है, वे वेद ज्ञान से दूर हुए हैं और फिर अन्धकार अर्थात् अज्ञान में डूब गए हैं। भाषा ज्ञान की वाहिनी है। जब वाहिनी बिगड़ जाए तब उसमें लायी जानेवाली वस्तु भी विकृत हो जायेगी। यही बात उन जातियों की हुई है जो वैदिक भाषा को छोड़ अन्य भाषाओं को बोलने लगे हैं। जितनी-जितनी कोई भाषा वैदिक भाषा से विलक्षण हुई है, उतना-उतना ही उसमें ज्ञान भी बिगड़ा है।

भाषा का सम्बन्ध बोले जाने वाले शब्दों से है। लिपि से नहीं। लिपि परमात्मा से दी गयी विद्या नहीं है। यह मनुष्य से आविष्कृत की गयी है। लिपियों में प्रथम आविष्कार ब्राह्मी लिपि का हुआ था। परन्तु अनुभव से यह अव्यवहारिक समझी गयी और इसके उपरान्त इसमें सुधार किया गया। देवनागरी लिपि भी ब्राह्मी लिपि में एक सुधार ही है। लेटिन लिपि भी ब्राह्मी लिपि में सुधार ही समझना चाहिए।

वर्तमान संस्कृत तो वैदिक भाषा में विकार ही है। यही कारण है कि वेदार्थ समझने के लिए संस्कृत पूर्णरूप से सहायक नहीं होती। संस्कृत के कोश और व्याकरण से वेदवाणी का कोश और व्याकरण भिन्न है। इस पर भी इतना तो स्पष्ट ही है कि वर्तमान प्रचलित भाषाओं में संस्कृत वेदवाणी के अति समीप है।

यहाँ लिखा है कि वेदवाणी सुख और ऐश्वर्य देनेवाली है। इस कारण इसकी हत्या नहीं करनी चाहिए। न तो इसको विस्मरण करना और न ही इसके अर्थों का विकृत करना मानव-कल्याणयुक्त होगा।

इस विषय में कहा है :

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गौरीर्मिमाय सलिलानि तक्षत्येकपदी द्विपदी सा चतुष्पदी ।
अष्टापदी नवपदी बभूवुषी सहस्राक्षरा परमे व्योमन् ।।
(ऋ० १-१६४-४१)

यह वेद वाणी गाय के समान शब्द करती हुई दिखायी देती है। महर्षि स्वामी दयानन्द 'गौरीः' का अर्थ करते हैं गौ—स्वर्ण युक्त विदुषी स्त्रियों की भाँति। अर्थ स्पष्ट है कि बहुत सुन्दर मीठी शब्द करती हुई और जल की भाँति तरल अर्थात् सुगमता से टुकड़े किये जाने योग्य अथवा मोड़-तोड़कर अनेक रूप दी जाने योग्य। इसमें एक वाक्य वाले पद हैं, दो वाक्य वाले, चार वाक्य वाले, आठ वाक्य वाले और नौ वाक्य वाले पद हैं। इसमें असंख्य शब्द हैं और यह वाणी सर्वोत्तम एवं व्यापक है। इसका प्रयोग किसी प्रकार का भी भाव प्रकट करने के लिए किया जा सकता है।

एक पद, द्विपद इत्यादि का अर्थ महर्षि स्वामी दयानन्द ने एक वेद, दो वेद, तीन वेद, चार वेद तथा चार उपवेद से किया है और नवें पद का अभिप्राय वह व्याकरण पढ़ने से करते हैं।

हम समझते हैं कि यह पूर्वापर प्रकरण से मेल नहीं खाता। अर्थ वही है कि इसके मन्त्रों में कितने-कितने वाक्य हैं ? वैसे अक्षरों की कुल संख्या असंख्य है। यहाँ शब्दों को अक्षर माना है। वेदवाणी का आविर्भाव शब्दों में ही हुआ है।

वेदवाणी को सलिला भी कहा है। जल के टुकड़े हम सरलता से कर सकते हैं। जल को हम जिस भी बर्तन में डालें, उसी का रूप वह हो जाता है। अतः वाणी का सलिलावत् होने से अभिप्राय यह है कि उसमें जैसा भी भाव भरना चाहें, भर सकते हैं अर्थात् वेदवाणी में सब प्रकार के भाव प्रकट किये जा सकते हैं।

पदार्थ—

(गौरीः) गाय के समान। (मिमाय) मिमाती शब्द करती हुई। (सलिलानि) जल के समान तरल। (तक्षती) काट-छाँट करती हुई। (एकपदी) एक पद वाली। (द्विपदी) दो पद वाली। (चतुष्पदी) चार पदवाली। (सा) वह। (अष्टापदी) आठ पद वाली। (नवपदी) नौ पद वाली। (बभूवुषी) शोभायुक्त। (सहस्राक्षरा) सहस्रों अक्षरों वाली। (परमे) परम अर्थात् सर्वोत्तम। (व्योमन्) व्यापक है।

(ऋ० १-१६४-४१)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

: ५ :

अभी तक इस सूक्त के इकतालीस मन्त्रों का भावार्थ लिखा जा चुका है। उन सब मन्त्रों का देवता 'विश्वे देवाः' है। हम बता चुके हैं कि देवता का अर्थ मन्त्र में वर्णित विषय है, अर्थात् उन मन्त्रों में वर्णन किये विषय विश्व के देवता थे। इनमें परमात्मा, जीवात्मा, प्रकृति, सूर्य चन्द्रादि नक्षत्र और प्राण माने हैं। इन देवताओं के सहयोग से प्राणी भी देवता माने गये हैं और प्राणियों में सर्वश्रेष्ठ प्राणी मनुष्य कहा गया है। प्राणियों में श्रेष्ठ इस कारण कि वह वेद वाणी को ग्रहण कर इसका तात्पर्य समझ सका है। उस तात्पर्य को समझकर वह दूसरों तक, जो नहीं समझ सके, पहुँचा सका है। वेदार्थ समझ सकने वालों को ऋषि कहा है। ये भी देवता माने गये हैं।

अतः अभी तक 'विश्वे देवाः' में निम्न विषयों का वर्णन किया गया है—

(१) परमात्मा (२) जीवात्मा (३) प्रकृति (४) प्राण (५) जगत् और उसमें भवन (६) सूर्य (७) पृथिवी (८) प्राणी (९) मनुष्य (१०) वेद वाणी (११) सामान्य वाणी।

इस सूक्त के अगले मन्त्र भिन्न-भिन्न देवताओं अर्थात् विषयों पर कहे गये हैं। प्रत्येक मन्त्र का अपना-अपना विषय है। कभी तो एक मन्त्र के आधे भाग का देवता एक है और आधे भाग का दूसरा है। यह हम मन्त्र की व्याख्या करते समय देखेंगे

मन्त्रों के देवता भिन्न-भिन्न होने पर भी ये इसी सूक्त (१-१६४) में रखे गये हैं। इसका कारण यह है कि हैं ये भी विश्व के देवता। इनका विशेष वर्णन करने के लिये इनको देवता पृथक् दिया गया है। साथ ही ये देवता मनुष्य के विशेष प्रयोजन के होने के कारण इनका पृथक् वर्णन किया गया है।

अगला मन्त्र है—

तस्याः समुद्रा अधि वि क्षरन्ति तेन जीवन्ति प्रदिशश्चतस्रः।
ततः क्षरत्यक्षरं तद् विश्वमुप जीवति॥
(ऋ० १-१६४-४२)

पदार्थ—

(तस्याः) उसके। (समुद्रा) समुद्र से। (अधि विक्षरन्ति) विविध प्रकार से झड़ती है। (तेन) उस झरने से। (जीवन्ति) जीवन मिलता है। (प्रदिशः) दिशा उपदिशा में। (चतस्रः) चारों ओर विस्तार पाती है।

(ततः) उससे। (क्षरति) बरसता है। (अक्षरम्) अविनाशी। (तत्) उससे। (विश्वम्) समस्त। (अप) अप अथवा महत्। (जीवति) जीवन प्राप्त करता है। (ऋ० १-१६४-४२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस मन्त्र में दो विषयों पर कहा है। इसका पूर्वार्द्ध का देवता है वाचः—वाणी और उत्तरार्द्ध का देवता है आपः। वाणी और आपः में परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध प्रतीत होता है। इसी कारण दोनों का उच्चारण एक ही स्वर में किया है।

यह इस प्रकार प्रतीत होता है। आपः स्वधा का प्रथम परिणाम है। यह हम बता चुके हैं कि परमाणुओं में जब साम्यावस्था भंग होती है तो परमाणुओं में आकर्षण-विकर्षण होने लगता है। साम्यावस्था भंग होने पर आकर्षण-विकर्षण से कोई अन्य टिकाऊ (stable) रूप अभी प्रकट नहीं हुआ होता। उस अवस्था को आपः अथवा महत् कहते हैं। यह अति शक्तिशाली और जगत् में बनने वाले सब पदार्थों का पूर्व रूप है।

ऐसा प्रतीत होता है कि जब यह बना तभी वाणी का आविर्भाव हुआ। इसी कारण एक ही मन्त्र में दोनों का एक साथ वर्णन किया गया है।

परमाणुओं में परस्पर संयोग-वियोग से ही वाणी का आविर्भाव हुआ प्रतीत होता है। शतपथ ब्राह्मण में कहा है कि जब हिरण्यगर्भ बना, अर्थात् जगत् रचना अभी अण्डे के भीतर ही हो रही थी, तब ही त्रयी विद्या प्रकट हुई थी। इस मन्त्र में भी आपः और वेदवाणी का इकट्ठा वर्णन यही प्रकट करता है।

मन्त्र में कहा है कि उसमें अर्थात् आपः के समुद्र में यह वाणी पड़ी थी। समुद्र सृष्टि-रचना के उस विशाल स्वधा के भाग को कहते हैं जिसमें सृष्टि रचना आरम्भ हुई थी। इस समुद्र को गहन और गम्भीर कहा है (१०-१२९-१)। इस समुद्र में से वेद वाणी ऐसे झड़ने लगी जैसे कि वर्षा होती है। यह सब दिशाओं प्रदिशाओं में चारों ओर फैलने लगी। उस वर्षा से जीवन प्राप्त होने लगा। शतपथ ब्राह्मण (६-१-१-८) में लिखा है कि उस प्रजापति (हिरण्यगर्भ) ने कामना की कि मैं बहुत हो जाऊँ। इस अर्थ उसने श्रम किया, तप किया और उसने श्रान्त और तप्त होकर ब्रह्म अर्थात् त्रयी विद्या को उत्पन्न किया।[1]

शतपथ ब्राह्मण में ही आगे कहा है—

सोऽपोऽसृजत। वाच एव लौकाद्वागेवास्य सासृज्यत सेदं सर्वमाप्नोद्यदिदं किं च यदात्नोत्तस्मादापो यदवृणोत्तस्माद्वाः॥

(श० ब्रा० ६-१-१-९)

इसका अर्थ है—वाणी से (उसने) जल बनाया। क्योंकि वाणी इसी की थी। वाणी के लोक का यह सृजन था। वह इस सब में व्यापक हुई। इसलिये

१. देखें भूमिका।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसका नाम आपः हुआ। क्योंकि इन्होंने ढका, इस कारण इसका नाम 'वारि' हुआ।

शतपथ ब्राह्मण उसी भाव को प्रकट कर रहा है जिसे इस मन्त्र में प्रकट किया गया है। मन्त्र में कहा है कि उसके समुद्र में से वाणी बरसने लगी। क्यों ? यह ब्राह्मण ग्रन्थ में लिखा है कि वाणी से ही आपः बना था। यह वाणी का ही रचा हुआ था। इस कारण इसमें से (वेद मन्त्र में कहा है) वाणी झड़ने लगी। यह चारों ओर फैलने लगी। (देखो ऋ० ८-१००-१०, ११)। उसके झड़ने से जीवन मिलता है, अर्थात् रचना कार्य आगे चलता है। यह रचना कार्य चारों ओर विस्तार पाता है। यह आपः 'जो स्वधा का' साम्यावस्था भंग हुआ रूप ही होता है, इस कारण यह अविनाशी है और इससे पूर्ण जगत् बना है।

प्रश्न उपस्थित होता है कि वाणी का क्या रूप होगा जिससे सृष्टि रचना में सहायता मिली होगी।

इसका संकेत मिलता है ऋ० ८-१००-१०, ११ में। वहाँ कहा है कि यह ऊर्जा की तरंगों की भाँति चारों ओर फैलती है।

हमारा विचार है कि उस समय वाणी तरंगों के रूप में ही प्रकट हुई थी और यह पीछे जब सूर्य, वृहस्पति, इन्द्र, वरुण इत्यादि बन गये तो परमात्मा की ओर से वाणी के भिन्न-भिन्न छन्द भिन्न-भिन्न देवताओं को मिले। वाणी के उस प्रारम्भिक रूप में ही इस मन्त्रों का अभिप्राय है।

वाणी और आपः के विषय में बताकर अब शक धूमः और सोम के विषय में कहा है।

शकमयं धूममारादपश्यं विषूवता पर एनावरेण।
उक्षाणं पृश्निमपचन्त वीरास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्॥
[ऋ० १-१६४-४३]

पदार्थ—

(शकमयं) शक्तिशाली। (धूमम्) धुएँ का। (आरात्) समीप से। (अपश्यम्) देखता हूँ। (विषूवता) व्याप्तिमान होने से अर्थात् बहुत विस्तार में होने से। (पर) दूर। (एना) इस। (अवरेण) नीचे व ऊपर अर्थात् इधर-उधर जाते हुए।

(उक्षणम्) सींचने वाले को। (पृश्निम्) आकाश को। (अपचन्त) परिपक्व करते हैं। (वीराः) विधाओं से व्याप्त। (तानि) वे सब। (धर्माणि) धर्मों को। (प्रथमानि) प्रथम। (आसन्) प्राप्त होता है।

(ऋ० १-१६४-४३)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शक धूमः का अभिप्राय है शक्तिशाली धुआँ। इसके विषय में वेद कहता है कि शक्तिशाली धुआँ जो आकाश में ऊपर-नीचे इधर-उधर चल रहा है, वह जब समीप से देखता है तो बहुत विस्तार में दिखाई देता है और उसमें नाना प्रकार के निर्माण कार्य हो रहे दिखाई देते हैं।

आकाश में वह सींचन कार्य कर रहा है और सींचे हुए को परिपक्व कर रहा है। उसमें सब विधायें व्याप्त हैं और सब धर्मों से अभिप्राय यह है कि करने योग्य कर्मों को वह सबसे पहले प्राप्त होता है।

आकाश में धुएँ के समान और शक्तिशाली से अभिप्राय है हिरण्यगर्भ (nebula)। जब व्योम (space) में किसी स्थान पर जगत् रचना होने लगती है तो उस स्थान पर परमाणुओं की साम्यावस्था भंग होती है। और परमाणुओं के सत्त्व, रजस्, तमस् के आकर्षण-विकर्षण से महान शक्ति का आविर्भाव होता है। इससे वह पूर्ण स्थान जहाँ यह आकर्षण-विकर्षण हो रहा होता है, चमकने लगता है। वहाँ ताप और प्रकाशमय बादल सा कुछ उड़ता दिखाई देने लगता है। यह लाखों-करोड़ों मीलों की लम्बाई-चौड़ाई और गहराई में होता है। परमाणुओं के आकर्षण-विकर्षण से सृष्टि रचना होने लगती है। इस रचना कार्य से नाना प्रकार के अन्तरिक्ष के पदार्थ बनने लगते हैं।

यह शतपथ ब्राह्मण के प्रमाण से हम बता चुके हैं। साथ ही वेद मन्त्र (ऋ० १०-१३०-४,५) के प्रमाण से भी स्पष्ट कर चुके हैं कि इसी समय वेद वाणी प्रसारित होती है जो ज्ञान का स्रोत है।

इस वेद मन्त्र में कहा है कि एक शक्तिशाली धुआँ (वीराः) विधाओं से व्याप्त होता है और वे सब धर्म अभिप्राय यह कि कर्म जो अब हो रहे हैं, तब ही होने लगते हैं। कर्मों से अभिप्राय सृष्टि निर्माण के कर्मों से है। सृष्टि रचना सम्बन्धी सब कार्य सबसे पहले इसी शक्तिशाली धुएँ (हिरण्यगर्भ) में ही होते हैं।

हिरण्यगर्भ को प्रजापति भी कहा है। यहाँ प्रजा का अभिप्राय प्रकृति से बनने वाले पदार्थ हैं। उपनिषद् में कहा है—

अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां बह्वीः प्रजाः सृजमानां सरूपाः।

एक अनादि तत्त्व रजस्, सत्त्व और तमस् स्वभाव वाली प्रकृति अपने ही स्वरूप वाली बहुत प्रजाओं का सृजन करती है।

यह सृजन हिरण्यगर्भ में ही होता है।

विश्व के दिव्य गुण सम्पन्न पदार्थों में जो कुछ हिरण्यगर्भ के विषय में कहा गया है, वही सोम के विषय में भी है। सोम का अर्थ है सूर्य। सूर्य का स्वरूप

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो प्रारम्भिक है वह हिरण्यगर्भ ही होता है और उसमें वह सब कुछ हो रहा होता है, जो हिरण्यगर्भ में हो रहा है।

सूर्य में भी परमाणुओं के संयोग-वियोग हो रहे हैं और वहाँ भी ताप और प्रकाश से निर्माण कार्य हो रहा है। इस कारण सोम (सूर्य) का भी इस मन्त्र में वर्णन है।

इस वाणी, आपः, शकधूम और सोम के विषय में कहकर अब अग्नि, सूर्य और वायु के विषय में बताते हैं।

त्रयः केशिन ऋतुथा वि चक्षते संवत्सरे वपत एक एषाम्।
विश्वमेको अभि चष्टे शचीभिर्ध्राजिरेकस्य ददृशे न रूपम्॥
(१-१६४-४४)

अग्नि, सूर्य और वायु भी विश्व के देवता ही हैं इनके विषय में वेद में कहा है कि तीन केशिन तेजस्वी पदार्थ हैं। केशिन का अर्थ मोनियर विलियम लिखते हैं— (having tips as rays or flames) किरणों की भाँति किनारे रखनेवाले पदार्थ। अग्नि का भावार्थ शक्ति अथवा ऊर्जा से है। सूर्य की भी किरणें होती हैं। वायु भी शक्ति तथा ऊर्जा का नाम है। यहाँ वायु का अर्थ वायु-मण्डल की हवा (air) नहीं। यहाँ वायु से वही अभिप्राय है जो बृहदारण्यक उपनिषद् में इस प्रकार वर्णन किया गया है—

स होवाच वायुर्वै गौतम तत् सूत्रं वायुना वै गौतम सूत्रेणायं च लोकः परश्च लोकः सर्वाणि च भूतानि सन्दृब्धानि भवन्ति तस्माद् वै गौतम पुरुषं प्रेतमाहुर्व्यस्रंसिषतास्याङ्गानीति वायुना हि गौतम सूत्रेण सन्दृब्धानि भवन्तीत्येवमेवैतद्·····

(बृहदा० ३-७-२)

अर्थात्—उस (याज्ञवल्य) ने कहा : हे गौतम ! वायु ही वह सूत्र है।

पदार्थ—

(त्रयः) तीन। (केशिन) तेजस्वी पदार्थ। (ऋतुथा) ऋतु अनुसार अर्थात् समयानुसार। (वि चक्षते) विशेष प्रकार से दिखाई देते हैं। (संवत्सरे) संवत्सर अर्थात् काल में। (वपत) बीजारोपण करता है। (एकः) एक। (एषाम्) इनमें से।

(विश्वम्) विश्व को। (एकः) एक। (अभि चष्टे) प्रकाशित करने से। (शचीभिः) कर्म से (ध्राजिः) गति। (एकस्य) एक। (वायु) का। (ददृशे) दिखाई देता। (न) नहीं। (रूपम्) रूप।

(ऋ० १-१६४-४४)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गौतम ! वायु रूप सूत्र द्वारा ही यह लोक, परलोक और समस्त भूत समुदाय गुँथे हुए हैं। हे गौतम ! इसी से मरे हुए पुरुष को ऐसा कहते हैं कि इसके अंग विस्रस्त (विशीर्ण) हो गये हैं; क्योंकि हे गौतम! वे वायु रूप सूत्र से ही संग्रथित होते हैं।

यह वायु भी एक प्रकार की शक्ति है। इसकी भी तरंगें ही होती हैं। ये शक्तियाँ निरन्तर कार्य नहीं करतीं। किसी काल अवधि में समय-समय पर अपनी प्रकार से कार्य करती हैं। इनमें से एक सन्तानोपत्ति के अर्थ बीजारोपण करती है। दूसरी विश्व को प्रकाश देती है और तीसरी गति उत्पन्न करती है। यह तीसरी रूपवान नहीं है। अर्थात् यह इन्द्रियगोचर नहीं। अग्नि और सूर्य इन्द्रियगोचर हैं।

सूर्य का अभिप्राय भी समझ लेना चाहिए। सूर्य से अभिप्राय है प्रकाशमान पदार्थ। अग्नि, सूर्य और वायु तीनों हिरण्यगर्भ में कार्य करनेवाली शक्तियाँ हैं। अग्नि से प्रजायें, अर्थात् जगत् के भिन्न-भिन्न पदार्थ बनते हैं। सूर्य से हिरण्यगर्भ प्रकाशित होता है और वायु से यह अन्तरिक्ष में ऊपर-नीचे इधर-उधर चलता है। इसमें गति वायु से ही है।

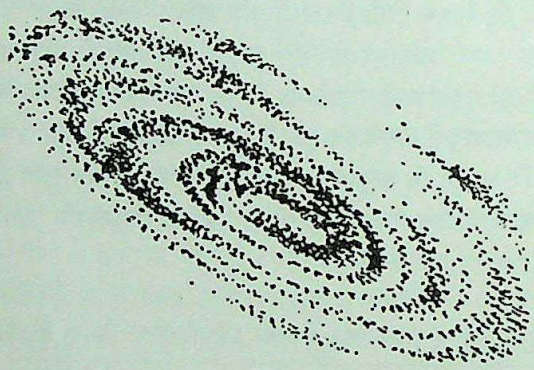

एक हिरण्यगर्भ (Nebuls)

इससे अगले मन्त्र का देवता 'वाक्' है।

चत्वारि वाक् परिमिता पदानि तानि विदुर्ब्राह्मणा ये मनीषिणः।
गुहा त्रीणि निहिता नेङ्गयन्ति तुरीयं वाचो मनुष्या वदन्ति ॥
(ऋ० १-१६४-४५)

पदार्थ—

(चत्वारि) चार रूपों में। (वाक्) वाणी। (परिमिता) सीमित है। (पदानि) पदों में। (तानि) उनको। (विदुः) जानते हैं। (ब्राह्मणाः) विद्वान्। (ये) जो। (मनीषिणः) मननशील लोग।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस मन्त्र में बताया है कि वाणी के चार रूप हैं। वाणी इन चार रूपों में सीमित है। अभिप्राय यह कि इसका पाँचवा रूप नहीं है। साथ ही सीमित है पदों में। पदों का अर्थ शब्द और वाक्य है। अभिप्राय यह कि वाणी पदों में अर्थात् शब्दों और वाक्यों में प्रकट हुई थी, अक्षरों में नहीं। उदाहरण के रूप में शक्ति के लिए अग्नि शब्द आया है। 'अग्नि' शब्द का आविर्भाव हुआ है, यह नहीं कि 'अ-ग्-न् तथा 'ई' अक्षर-अक्षर करके प्रकट हुए हों। इसी प्रकार वाक्य है—'अग्निमीळे पुरोहितं'। यह एक वाक्य है। वेद मन्त्र का यह पूर्ण वाक्य का वाक्य प्रकट हुआ। पदों में सीमित का यही अभिप्राय बनता है। इन पदों (शब्दों और वाक्यों) को विद्वान और मनीषि जानते हैं।

वाणी के चार रूप बताये हैं। इनमें तीन रूप तो गुहा और मस्तिष्क में स्थित होते हैं। ये तीन रूप चेष्टा नहीं करते। अर्थात् प्रकट नहीं होते। ये विद्वान मनीषि के मन में ही रहते हैं और वहाँ इनकी प्रतिक्रिया उत्पन्न होती है। वह प्रतिक्रिया चौथे रूप में प्रकट होती है। अभिप्राय यह कि मनुष्य जब बोलता है तो इसका चौथा रूप प्रकट होता है।

मन्त्र सर्वथा स्पष्ट है। तीन रूप गुहा अर्थात् हृदय जिसे आजकल की भाषा में मस्तिष्क कहते हैं, में ही रहते हैं। वे तीन रूप क्या हैं ? यह विचारणीय है।

भिन्न-भिन्न भाष्यकारों ने इन रूपों के भिन्न-भिन्न अर्थ लगाये हैं। उदाहरण के रूप में एक विद्वान् 'भुः, भुवः, स्वः' और 'ओ३म्' में चार रूप बताते हैं। हमारे विचार में ये चारों रूप मुख से बोले जाते हैं। अतः वे तीन रूप जो चेष्टा नहीं करते और गुहा में छुपे रहते हैं, ये नहीं हैं।

कुछ अन्य विद्वान् इसे ऋक्, यजु, साम कहते हैं। हमारे विचार में ये भी नहीं। यह अर्थ भी उक्त कसौटी पर ठीक नहीं बैठता। इन चार रूपों के विषय में एक अन्य कल्पना की गयी है। वह है नाम, अख्यात, उपसर्ग और निपात्। इन शब्दों का अर्थ है संज्ञा, क्रिया, विशेषण और स्वर। ये भी गुहा में चेष्टारहित हों, ऐसा नहीं।

हम इन रूपों को ज्ञान, कल्पना, निष्कर्ष और वाणी (बोली) मानते हैं। ज्ञान तो इन्द्रियों द्वारा अथवा परमात्मा की कृपा से मन को प्राप्त होता है।

(गुहा) मस्तिष्क में। (त्रीणि) तीन। (निहिता) स्थित हैं। (न) नहीं। (इङ्गयन्ति) चेष्टा नहीं करते। (तुरीयम्) चौथा। (वाचः) वाणी का। (मनुष्या) मनुष्य। (वदन्ति) बोलते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मन मस्तिष्क का एक अंग ही है। कल्पना और निष्कर्ष बुद्धि के होते हैं। बुद्धि विचार करती है और विचार अर्थात् मनन का परिणाम कल्पना और निष्कर्ष होते हैं। ये तीनों रूप मस्तिष्क का ही विषय हैं। गुहा का अर्थ गुप्त स्थान है, छुपा हुआ। मनुष्य और वाणी के सम्बन्ध में यह मस्तिष्क ही मानना पड़ेगा।

परमात्मा ने भी जब वेद वाणी मनुष्य को दी तो यह ऋषियों के मस्तिष्क में ही दी। यह वाणी उस रूप में नहीं हो सकती जो कर्णेन्द्रिय द्वारा सुनी जा सकती है। यह ज्ञान के रूप में ऋषियों के मन में प्रस्फुटित हुई होगी। ऐसा ही प्रतीत आता है कि वाणी का प्रथम रूप ज्ञान ही है चाहे तो वह परमात्मा से आये और चाहे ज्ञानेन्द्रियों द्वारा मनुष्य को अनुभव हो।

मस्तिष्क ज्ञान पर कल्पना-परिकल्पना करता है। यह बुद्धि करती है। आदि काल में ऋषि जो पूर्व कल्प के पुण्यात्मा थे, और श्रेष्ठ बुद्धि रखते थे, वही परमात्मा की वेद वाणी (ज्ञान के रूप में) ग्रहण कर उस पर कल्पना कर सके थे और निष्कर्ष निकाल सके थे।

वाणी के प्रथम तीन रूपों के विषय में हम यही समझे हैं। चौथा रूप तो मन्त्र में लिखा है। यह मनुष्यों द्वारा बोला जानेवाला रूप है। ऋषियों ने मन्त्र उच्चारण किये। यह वाणी चेष्टा युक्त और कर्ण इन्द्रिय से ग्रहण करने योग्य हैं।

यहाँ इतना और समझ लेना चाहिये कि मन्त्र १-१६४-२४, २५, २६, २७, २८ वाणी की उत्पत्ति के विषय में कहे गये हैं। मन्त्र १-१६४-४२ में यह स्पष्ट करने का यत्न किया गया है कि वाणी का आविर्भाव हिरण्यगर्भ में हुआ था और मन्त्र १-१६४-४५ में वाणी के चार रूपों के विषय में कहा गया है।

अब अगले दो मन्त्र सूर्य के विषय में हैं।

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान्।
एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः॥
(ऋ० १-१६४-४६)

पदार्थ—

(इन्द्रं) ऐश्वर्यवान्। (मित्रम्) सखा। (वरुणम्) श्रेष्ठ। (अग्निम्) शक्तिमान अथवा दिव्य गुणोंवाले। (आहुः) कहा जाता है। (अथो) इसके अनन्तर। (दिव्यः) दिव्य गुणोंवाला। (स) वह। (सुपर्णाः) सुन्दर पंखोंवाला अथवा गतिवाला। (गरुत्मान्) सूर्य अथवा महानात्मा।

(एकम्) एक। (सत्) अस्तित्ववाला (विप्रा) विद्वान् लोग। (बहुधा)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह, जिसके विषय में यह मन्त्र है, ऐश्वर्यवान्, सबका सखा, सबसे श्रेष्ठ, महान् शक्तिमान्, दिव्य गुणोंवाला, सुन्दर गति से चलनेवाला गरुत्मान् कहा जाता है।

वह एक ही है और विद्वान् उसे बहुत नामों से कहते हैं। अग्नि, यम और मातरिश्वा उसी को कहा गया है।

इस मन्त्र का अर्थ प्रायः परमात्मापरक लगाये जाते हैं और कहा जाता है कि परमात्मा एक ही है और उसके अनेक नाम हैं। यास्क भी इसमें गरुत्मान् के अर्थ इसी प्रकार करता है। वह कहता है—

इममेवाग्निं महान्तं (च) आत्मानम् एकमात्मानं बहुधा मेधाविनो वदन्ति। इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निं दिव्यं च गरुत्मन्तम। दिव्यो दिविजः। गरुत्मान्गरणवान्। गुर्वात्मा। महात्मेति वा। (निरुक्त ७-१८)

अर्थात्—इस ही अग्नि को और आत्मा को और एक आत्मा को बहुत प्रकार से मेधावी जन कहते हैं। इन्द्र को, मित्र को, वरुण को, अग्नि को, दिव्य को और गरुत्मान् को। दिव्यः, द्यौः से जन्मा अथवा दिव्य गुण युक्त। गरुत्मान् गुणवान अर्थात् स्तुतिवाला। महान् आत्मा ऐसा कहा है।

यह स्पष्ट है कि यास्क इस मन्त्र के अर्थ भी परमात्मापरक ही लगाता है। तब इस मन्त्र के देवता सूर्य के अर्थ भी परमात्मापरक ही लगने चाहिये, परन्तु देखना यह है कि अगले मन्त्र में मन्त्र का विषय क्या परमात्मापरक है अथवा हो सकता है ?

हमारा विचार है कि इस सूक्त के मन्त्रों के अर्थ केवल परमात्मापरक ही नहीं लगाने चाहियें। विश्वे देवा का अर्थ संसार के दिव्य गुणयुक्त पदार्थ हैं। हमने इस सूक्त में परमात्मा को भी एक दिव्य गुण युक्त पदार्थ के रूप में लिया है। परमात्मा के साथ प्रकृति और जीवात्मा को भी वैसे ही लिया है। सूर्य भी एक दिव्य गुणवाला पदार्थ है।

मन्त्र संख्या १-१६४-४७ में जल को बादलों में निर्माण कर उनको पुनः पृथिवी पर गिरानेवाला सूर्य माना है। इस मन्त्र में परमात्मा को जल से बादलों का निर्माण करनेवाला और पुनः वर्षा कर पृथिवी को गीला करनेवाला कहा है।

अतः हम समझते हैं कि ये दोनों मन्त्र परमात्मापरक भी लिये जा सकते हैं। इस पर भी हमारा इनको सूर्यपरक लेना भी ठीक ही है। यहाँ जैसे अन्य

बहुत भाँति (नामों) से। (वदन्ति) कहते हैं। (अग्निम्) अग्नि को। (यमम्) सर्व नियन्ता को। (मातरिश्वानम्) पिता, के गुणोंवाला। (आहुः) कहते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देवताओं का वर्णन है, वैसे ही सूर्य का भी वर्णन है।

सूर्य को इन्द्र (ऐश्वर्यवान्), पिता (सबका सखा), वरुण (श्रेष्ठ), दिव्यः (दिव्य गुण युक्त), सुपर्णा (सुन्दर गतिवाला), गुरुत्मान् (स्तुति योग्य), अग्नि (शक्ति रूप), यमम् (नियन्त्रण करनेवाला), मातरिश्वा (गति उत्पन्न करनेवाली वायु) कहते हैं। सूर्य एक ही है, परन्तु विद्वान् लोग उसको अनेक नाम से स्मरण करते हैं।

कृष्णं नियानं हरयः सुपर्णा अपो वसाना दिवमुत्पतन्ति।
त आववृत्रन् त्सदनादृतस्यादिद् घृतेन पृथिवी व्युद्यते ॥
(ऋ० १-१६४-४७)

सूर्य की तीव्र किरणें जल पर पड़ती हैं और जल को हरकर ले जाती हैं। वह जल बादल का रूप बनकर सूर्य को ढाँप लेता है। उस स्थान से ढाँपता है जहाँ वह होता है। अभिप्राय यह कि जिस स्थान के ऊपर बादल होता है, वहाँ सूर्य की किरणें नहीं पड़तीं। तदनन्तर इसके अनन्त ऋत के कारण बादल से जल बरसता है और भूमि को गीला कर देता है।

ऋतस्य का अभिप्राय है प्रकृति के अटल नियम (eternal law) के कारण बादल पुनः जल का रूप ग्रहण करते हैं और पृथिवी पर बरसते हैं और भूमि को गीला करते हैं।

हमारा मत है कि इन मन्त्रों के आधिभौतिक अर्थों से ही मन्त्रों के देवता का वर्णन हो सकता है। इन मन्त्रों का देवता सूर्य है। अतः वह सूर्य जो जल को खींचकर आकाश में ले जाता है, वह प्राकृतिक सूर्य (sun) ही है।

जिस किसी ने भी मन्त्र का देवता सूर्य निश्चय किया है, उसने भौतिक सूर्य के विचार से ही किया है।

इससे अगले मन्त्र का देवता 'सम्वत्सर का काल' है। इसका अभिप्राय है

पदार्थ—

(कृष्णम्) खींचने योग्य। (नियानम्) नियम से जानेवाले को। (हरयः) ले जानेवाला है। (सुपर्णा) गति से जानेवाली किरणें। (अपः) जल को। (वसाना) ढाँपता हुआ। (दिवम्) सूर्य को। (उत्पतन्ति) ऊपर से गिरती हैं।

(त) वे। (आववृत्रन्) चारों ओर से ढाँपते हुए। (सदनात्) स्थान से। (ऋतस्य) ऋत का। (आत् इत्) इसके अनन्तर ही। (घृतेन) जल के द्वारा। (पृथिवी) भूमि को। (वि) विशेष रूप में। (उद्यते) गीला कर देता है।

(ऋ० १-१६४-४७)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संवत्सर का आत्मा-काल ।

द्वादश प्रधयश्चक्रमेकं त्रीणि नभ्यानि क उ तच्चिकेत ।
तस्मिन्त्साकं त्रिशता न शङ्क्वो ऽर्पिताः षष्टिर्न चलाचलासः ।।
(ऋ० १-१६४-४८)

संवत्सर एक वर्ष के काल को कहते हैं। इसमें बारह महीने का चक्र होता है। प्रधय किसी चक्र की परिधि (circumberence) में कुछ मुड़ी हुई लकड़ी के टुकड़े को कहते हैं जो मिलकर घेरा बनाते हैं। वर्ष के घेरे में बारह प्रधय हैं जो महीने कहलाते हैं। इसकी तीन नाभियाँ हैं, आश्रय स्थान। अर्थात् मुख्य ऋतुएँ हैं—ग्रीष्म, वर्षा और शरद्। और इस काल में तीन सौ साठ दिन-रात हैं जो न्यूनाधिक होते रहते हैं। जब अधिक करने होते हैं तो कुछ दिन अर्पित कर दिये जाते हैं।

काल के विषय में पहले भी (१-१६४-११, १२ में) वर्णन किया जा चुका है। इस मन्त्र में विशेषता यह है कि पृथिवी पर इस चक्र में ऋतुओं और दिनों की गणना का वर्णन कर दिया है। यह भी बताया है कि वर्ष में दिन न्यूनाधिक होते रहते हैं।

अगले मन्त्र में सरस्वती के विषय में कहा है।

यस्ते स्तनः शशयो यो मयोभूर्येन विश्वा पुष्यसि वार्याणि ।
यो रत्नधा वसुविद् यः सुदत्रः सरस्वति तमिह धातवे कः ।।
(ऋ० १-१६५-४९)

पदार्थ—

(द्वादश) बारह। (प्रधयः) प्रधय घेरे की लकड़ी। (चक्रम्) चक्र। (एकम्) एक। (त्रीणि) तीन। (नभ्यानि) नाभि में अर्थात् धुरि या अथवा आश्रय स्थान। (क) कौन। (उ) निश्चय से। (तत्) उसको। (चिकेत) जानो।

(तस्मिन्) उसमें। (साकम्) साथ। (त्रिशता) तीन सौ। (न) नहीं। (शङ्क्वः) बाँधनेवाली कीलें। (अर्पिताः) अर्पित है, लगायी हुई है। (षष्टिः) साठ। (न) जैसे। (चलाचलसः) चल और अचल हैं। (ऋ० १-१६४-४८)

पदार्थ—

(यः) जो। (ते) तेरा। (स्तनः) माँ के स्तन के समान। (शशयः) शान्त करनेवाला है। (यः) जो। (मयोभूः) सुखप्रद। (येन) जिससे। (विश्वा)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरस्वती से अभिप्राय केवल वाणी से ही नहीं है। इससे साहित्य कला भी वाणी के साथ लेना चाहिये। यह कहा है कि जैसे माँ का स्तन बच्चे को शान्त और पुष्ट करने में सफल होता है, वैसे ही यह सरस्वती सबको पुष्ट करती है, सुख देती है और सबसे रसपूर्वक स्वीकार की जाती है। जो रमणीयता उत्पन्न करती है, अर्थ की प्राप्ति कराती है और सबको पुष्ट करती है, वह सरस्वती कौन है ?

सरस्वती का अर्थ मोनियर विलियम अपने शब्दकोश में करता है— eloquent speech। वह उसकी व्युत्पत्ति 'सरस' शब्द से मानता है। जो जल से अथवा रसमय तरलता से भरी हो। इसी कारण हमने इसका अर्थ साहित्य, कला और वाणी तीनों किया है।

वैसे भी वेद में अनेक स्थानों पर सरस्वती नदी के रूप में भी प्रयुक्त हुआ है, परन्तु यहाँ इस मन्त्र में यह कला और साहित्य के रूप में ही प्रयुक्त हुआ है।

पूर्व में (ऋ० १-१६४-४७ में) वायु का वर्णन किया है। सरस्वती का अभिप्राय केवल वाणी नहीं। वाणी तो ज्ञान का भण्डार है, परन्तु सरस्वती उस ज्ञान को लालित्यपूर्ण रूप में प्रस्तुत करने का नाम है।

यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्।
ते ह नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः॥
(ऋ० १-१६४-५०)

समस्त। (पुष्यसि) पुष्ट करती है। (वार्याणि) वरने योग्य अर्थात् स्वीकार करने योग्य है।

(यः) जो। (रत्नधा) रमणीयता धारण करनेवाली। (वसुवित्) धनों को प्राप्त होनेवाली। (यः) जो। (सुदत्रः) कल्याण करनेवाली। (सरस्वति) वाणी तथा कला। (तम्) उनको। (इह) यहाँ। (धातवे) पोषण करने को देती है। (कः) कौन। (ऋ० १-१६४-४९)

पदार्थ—

(यज्ञ) यज्ञ के द्वारा। (यज्ञम) यज्ञ का। (अयजन्त) भजन करते हैं। (देवाः) देवता अथवा विद्वान् लोग। (तानि) उनसे। (धर्माणि) धर्म का। (प्रथमानि) प्रथम (श्रेणी) का। (आसन्) होता है।

(ते) वे। (ह) ही। (नाकम्) शुद्ध सुख को। (महिमानः) सत्कार योग्य। (सचन्त) प्राप्त होते हैं। (यत्र) जहाँ। (पूर्वे) पहले काल में (साध्याः) सिद्धि में लगे हुए। (सन्ति) है। (देवाः) विद्वान्।

(ऋ० १-१६४-५०)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अब 'साध्याः' के विषय में कहा है। साध्याः का अभिप्राय है सिद्धि प्राप्त करने के साधन। मन्त्र में कहा है कि यज्ञ से ही यज्ञ का यजन होता है। यज्ञ का अर्थ है सर्वकल्याणमय कार्य। कोई कार्य सबके समान कल्याण के लिए किया जाये, वह यज्ञ कहलाता है। मन्त्र का अभिप्राय है कि लोक कल्याण का कार्य कल्याणमय कार्यों से ही हो सकता है। यज्ञ कार्य बिना किसी को कष्ट दिये अथवा अन्याय से छीना-झपटी किये होना चाहिए। अन्यथा इसका फल उलटा होता है। सिद्धि प्राप्ति में लीन व्यक्ति को अपने सब कर्म यज्ञमय करने चाहियें, परन्तु उस कल्याणमय कार्य में किसी के भी अकल्याण की भावना कार्य सिद्धि में बाधक होगी।

विद्वान् लोग यज्ञ रूपी कार्य से प्रथम श्रेणी के धर्मों की प्रतिष्ठा बनाये रखते हैं। मन्त्र में शब्द है 'आसन'। इसका अर्थ है उपस्थित। इसका अर्थ मुख भी है।

अर्थात् यज्ञ कर्मों में प्राथमिक धर्मों की प्रतिष्ठा बनाये रखनी चाहिए। प्राथमिक (fundamental) धर्म मनु इस प्रकार वर्णन करता है—

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम् ॥

(मनु० ६-९२)

अर्थात्—धैर्य, क्षमा-भाव, कामनाओं का दमन, परायी वस्तु न लेना, मन, वचन और कर्म की शुद्धि, इन्द्रियों का निग्रह, बुद्धि, ज्ञान की उपलब्धि, सत्य और अक्रोध ये धर्म के दस लक्षण हैं।

इन धर्मों का पालन यज्ञ में आवश्यक है। यहाँ यज्ञ का अर्थ वेद मन्त्रों से हवन का नहीं है। यहाँ जीवन के प्रत्येक कार्य को 'यज्ञेन' (यज्ञ की भावना द्वारा) करने के लिए कहा है। इसका यह अर्थ भी नहीं कि यज्ञ में अपने कल्याण की भावना नहीं होती। अपने को भी उसी प्रकार कल्याण का भागी समझें जैसे कि दूसरों को समझते हैं।

भगवद् गीता में यज्ञ करनेवाले के लिये कहा है—

यज्ञशिष्टामृतभुजो यान्ति ब्रह्म सनातनम्।
नायं लोकोऽस्त्ययज्ञस्य कुतोऽन्यः कुरुसत्तम ॥

(भ० गी० ४-४-३१)

यज्ञ मे शेष बचा हुआ अमृत पान भोग करनेवाला परमात्मा को प्राप्त होता है। इस लोक में यज्ञ की भावना से रहित मनुष्य परलोक का सुख प्राप्त नहीं करता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो लोग पहले काल में (पूर्वे) सिद्धि प्राप्त कर चुके हैं, उनका अनुकरण करने से ही सिद्धि प्राप्त होती है।

यह जानने के लिए कि पूर्व में कौन और किस प्रकार सिद्धि प्राप्त कर चुके हैं, इतिहास का निष्पक्ष भाव से अध्ययन आवश्यक है।

समानमेतदुदकमुच्चैत्यव चाहभिः ।
भूमिं पर्जन्या जिन्वन्ति दिवं जिन्वन्त्यग्नयः ।।

ऋ० १-१६४-५१

इस मन्त्र का देवता, सूर्य, पर्जन्य अथवा अग्नि है। इसका अर्थ है कि सूर्य, बादल और जल। इसके सम्बन्ध से पृथिवी पर हो रहे कल्याण कार्य का वर्णन है।

यहाँ कहा है कि जो जल ऊपर जाता है और बादल के रूप में दिखायी देता है, वह सामान्य जल ही है।

वेदों में कई स्थानों पर 'आपः' शब्द का प्रयोग हुआ है। सामान्य भाषा में आपः का प्रयोग जल के लिए किया जाता है। परन्तु वैदिक भाषा में आपः से उस पदार्थ का अर्थ लेना चाहिए जो प्रकृति में साम्यावस्था भंग होने पर परिवर्तनों का प्रथम् परिणाम है। इसे ही सांख्य में महत् कहा है। यद्यपि आपः और सामान्य जल में तरलता का गुण समान है, इस पर भी अन्य गुणों के विचार में दोनों पदार्थ भिन्न-भिन्न हैं।

इस मन्त्र में तो स्पष्ट लिखा है कि वह जल जो सूर्य के ताप से आकाश में जा कर पर्जन्य बादल बनता है, वह सामान्य पंचभौतिक जल है जिसे उदक के नाम से लिखा है। इसे ही अंग्रेजी में water कहते हैं।

अन्तरिक्ष को अग्नि तृप्त करती है। यहाँ अग्नि का अर्थ ऊर्जा (energy) है। इसमें विद्युत और अन्य प्रकार की किरणें सम्मिलित हैं। अन्तरिक्ष की किरणों को Cosmic rays कहते हैं। ये सूर्य से ही उत्पन्न हो चारों ओर

पदार्थ—

(समानम्) समान है। (एतत्) यह। (उदकम्) जल। (उत एति) ऊपर को जाता है। (च) और। (अव) नीचे को आता है। (च) और। (अहभिः) बहुत दिनों में।

(भूमिम्) भूमि को। (पर्जन्यः) मेघ। (जिन्वन्ति) तृप्त करती है। (दिवं) अन्तरिक्ष को। (जिन्वन्ति) तृप्त करती है। (अग्नयः) अग्नि।

(ऋ० १-१६३-५१)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फैल रही है।

ये किरणें बादलों पर पड़ती हैं और बादलों में संचित जल को वर्षा की बूंदों में परिवर्तित कर भूमि पर बरसाकर भूमि को तृप्त करती हैं।

अन्तरिक्ष को अग्नि तृप्त करती है। तृप्त होने से उसके पंजे में फंसा शिकार छूट जाता है। जल जो सूर्य ताप से अन्तरिक्ष में चला गया था, वह सूर्य की किरणों से तृप्त हो पृथ्वी पर गिरता है।

बादल कब बनते हैं? जब जल वाष्प के रूप में अन्तरिक्ष में चला जाता है। वहाँ ताप तथा अन्तरिक्ष की शक्तियों से वह बादल का रूप धारण कर लेता है। तदनन्तर विद्युत इत्यादि अन्तरिक्ष की किरणों से बादल जल छोड़ देते हैं। जल बूंदों के रूप में भूमि को तृप्त करता है।

ये अन्तरिक्ष की शक्तियाँ मनुष्य के वश में नहीं हैं। इसी कारण वर्षा अभी तक मनुष्य के अधीन नहीं हुई। वर्तमान विज्ञान इसके रहस्य को अभी तक ठीक ठीक जान नहीं सका। इस कारण कभी तो अति वर्षा हो जाती है और कभी सूखा पड़ जाता है।

इस सूक्त के अन्तिम मन्त्र का देवता 'सरस्वान सूर्यो' है।

दिव्यं सुपर्णं वायसं बृहन्तमपां गर्भं दर्शतमोषधीनाम्।
अभीपतो वृष्टिभिस्तर्पयन्तं सरस्वन्तमवसे जोहवीमि॥

(ऋ० १-१६४-५२)

सरस्वान अथवा सूर्य। अभिप्राय है रसयुक्त सूर्य। सूर्य की रश्मियाँ औषधियों में रस भर देती हैं। इसके रहस्य पर ही यह मन्त्र कहा गया है।

दिव्यगुणयुक्त सूर्य रश्मियाँ अपने भीतर स्थित सबसे बड़े अर्थात् आपः अभिप्राय महत् को औषधियों (वनस्पतियों) में बरस कर तृप्त करती हैं और रसयुक्त करती हैं। औषधियाँ और वनस्पतियाँ इस आपः से अपनी

पदार्थ

(दिव्यम्) दिव्य गुण युक्त। (सुपर्णम्) सुन्दर किरणों को। (वायसम्) अत्यन्त। (बृहन्तम्) सबसे बड़े। (अपाम्) अपः को। (गर्भम्) भीतर स्थित। (दर्शतम्) चाँद को दिखानेवाले। (ओषधीनाम्) वनस्पतियों को।

(अभीपतः) आगे-पीछे दोनों ओर। (वृष्टिभिः) वर्षा से। (तर्पयन्तम्) तृप्त करनेवाले। (सरस्वन्तम्) सुन्दर रस से युक्त। (अवसे) रक्षा के लिये। (जोहवीमि) निरन्तर ग्रहण करते हैं।

(ऋ० १-१६४-५२)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रक्षा ग्रहण करती हैं।

इस मन्त्र में दर्शतं से अभिप्राय है चाँद। रसमय सूर्य किरणों में स्थित आपः के कारण है। यह देखने में ही रसमय नहीं है प्रत्युत सूर्य किरणें इससे परिवर्तित होकर वनस्पतियों में रस भर देती हैं। वेद में कहा है कि यह किरणों में स्थित आपः के कारण ही है।

मन्त्र में 'वृष्टिभिः' शब्द से अभिप्राय जल की वर्षा नहीं, वरन् आपः युक्त किरणों की वर्षा से है। ये किरणें जब वनस्पतियों पर पड़ती हैं तो उनमें एक विशेष प्रकार की शक्ति का संचार करती हैं जिससे वनस्पतियों में वे पदार्थ बन जाते हैं जो बिना सूर्य की किरणों के नहीं बन सकते।

उदाहरण के रूप में वनस्पतियों के पत्तों में पर्ण हरित (Chlorophyll) सूर्य किरणों को ग्रहण कर वनस्पतियों में ऐसे पदार्थों का निर्माण करते हैं जो बिना इन साधनों के कहीं बन नहीं सकते।

कार्बोहाईड्रेट्स (Carbohydrates और) जटिल एमीनज़ (higher amines) सूर्य किरणों के प्रभाव के बिना नहीं बन सकतीं।

वेद कहता है कि सूर्य किरणें अपने गर्भ में आपः लिये हुए आती हैं और वे वनस्पतियों को रसयुक्त कर देती हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपसंहार

: १ :

मानव मन के विकास के लिये तीन प्रकार से यत्न चल रहा है। ये तीन प्रकार हैं : विज्ञान (science], दर्शन (philosophy) और मत अर्थात पंथ (religion)।

भारतीय परम्परा में विज्ञान वेद हैं। दर्शन, दर्शन-शास्त्र हैं। मत अथवा पंथ पुराण हैं। इन तीनों में समन्वय होना आवश्यक है। यह समन्वय सुगम बात नहीं है। कारण यह कि विज्ञान और मत (वाद) में समन्वय दर्शन करते हैं और दर्शन एक सिद्धान्त पर चलते हैं। प्रायः दार्शनिक उस सिद्धान्त को या तो समझते नहीं अथवा समझते हैं तो उसके अनुसार चलने में कठिनाई अनुभव कर उसको छोड़ देते हैं और हवा में उड़ने लगते हैं।

यह दुर्घटना केवल भारतवर्ष में ही नहीं घटी, वरन् यह भूमण्डल के सब देशों में हो रही है।

भारत में एक ओर तो दर्शनाचार्यों के दर्शन और मत (पुराण) का सम्बन्ध टूटा है तथा दूसरी ओर विज्ञान (वेद) का सम्बन्ध भी दर्शन से टूट गया है। यह कैसे हुआ है, कहना अति कठिन है। इस पर भी हम देख सकते हैं कि महात्मा बुद्ध के काल से पूर्व ही विज्ञान, दर्शन और मतवाद में कड़ी टूट चुकी थी। यदि यह कड़ी न टूटी होती तो बौद्धमत की दुर्घटना होती ही नहीं। उन्होंने वेदों को अस्वीकार कर दिया था।

महात्मा बुद्ध के काल से पूर्व मत अयुक्ति संगत (irrational) और अवैज्ञानिक (unscientific) हो चुका था। इसी कारण नये मतों का आविष्कार होने लगा था। शाक्त और वाम मार्ग उस समय उत्पन्न हो चुके थे।

भारत में बुद्ध काल के उपरान्त भारतीय विज्ञान के स्रोत वेद की निन्दा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आरम्भ हो गई। उसमें कारण यह था कि सांख्य और वेदान्त दुर्बल हो चुके थे। वेदान्त दर्शन को जब वेदों को छोड़ उपनिषदों के आधार पर स्थापित किया गया तो दर्शन भी पतन को प्राप्त हुआ।

उपनिषद् विज्ञान के ग्रन्थ नहीं हैं। अत: उनके आधार पर दर्शन अवैज्ञानिक हो गया और उससे उत्पन्न मत-मतान्तर अदार्शनिक हो गये।

हमारा यह सुनिश्चित मत है कि विज्ञान, दर्शन और मतवाद में समन्वय होना चाहिये। जब यह समन्वय विद्वानों के मन में भी नहीं रहा, तब जातीय मन अविकसित हुआ और जाति भारी कठिनाई में पड़ गयी।

यूरोप में एक दूसरे ढंग से यह समन्वय टूटा है। वेद-ज्ञान विस्मरण हुआ मूल ज्ञान की भाषा छोड़ने से। वेदवाणी छूटी तो वेद विज्ञान छूटा और ज्ञान छूटने से दर्शन तथा मज़हब दोनों बिगड़े और मध्य एशिया तथा उत्तरी यूरोप में अंधकार का युग आरम्भ हो गया। इस अंधकार युग का परिणाम हुआ रोमन साम्राज्य जिसने रहा-सहा विज्ञान और दर्शन भी नष्ट कर दिया और तब ईसाई मत का जन्म हुआ जो दर्शन और विज्ञान से कोसों दूर था।

सोलहवीं शताब्दी में पुनरुत्थान की एक लहर उठी थी, परन्तु वह लहर अवैज्ञानिक दर्शन के आधार पर थी। परिणामत: कम्युनिज़्म जैसी अवैज्ञानिक विचारधारा यूरोप और यूरोप से भी बाहर फैलने लगी।

हम कम्युनिज़्म को जीवन का एक दर्शनशास्त्र मानते हैं जो जीवन को ही निर्मूल करनेवाला है।

यूरोप समझता है कि उसने विज्ञान में बहुत उन्नति कर ली है, परन्तु दर्शन से असम्बद्ध विज्ञान कम्युनिज़्म का जन्मदाता बन गया है। जहाँ कम्युनिज़्म अभी नहीं पहुँचा, वहाँ नाइट क्लब और नग्न नाच होने लगे हैं।

इसी समन्वय के अभाव का ही परिणाम है कि रोमन कैथोलिक पादरी विवाह के लिये हड़तालें करने लगे हैं और पुरुष प्रोफ़ेसर लड़कों से ही विवाह की याचना करते दिखायी देते हैं। गर्भपात एक निरापराध कर्त्तव्य हो गया है।

यह समन्वय कैसे हो सकेगा ? एक गम्भीर प्रश्न है।

: २ :

पंथ अथवा वाद मानव-व्यवहार से सम्बन्ध रखता है। पूजा-पाठ, अन्य व्यवहार और व्यापार, अभिप्राय यह कि सबका सम्बन्ध दर्शन और विज्ञान से हो तो जीवन सरलता से चल सकेगा।

उदाहरण लें तो बात स्पष्ट हो जायेगी। एक ठेकेदार है अथवा एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यापारी है। दोनों के कार्यों में ईमानदारी और सत्य की आवश्यकता होती है और दोनों के कार्य में सत्य व्यवहार और ईमानदारी के विपरीत भारी प्रलोभन भी होते हैं। इन प्रलोभनों का दमन मज़हब तब ही कर सकता है जब मज़हब के आधार में दर्शन हो और दर्शन का आधार विज्ञान हो।

वर्तमान विज्ञान मनुष्य से ऊपर सर्वद्रष्टा तत्त्व को अस्वीकार करता है। यद्यपि दर्शन विज्ञान की इस बात को स्वीकार नहीं करता तो भी दोनों में समन्वय न होने से दर्शन कहता रहता है कि सर्वद्रष्टा, न्यायकारी से डरो, परन्तु विज्ञान-वादी कहता रहता है कि न परमात्मा दिखायी देता और न ही जीवात्मा। विज्ञान प्रत्यक्ष को ही देखता है। दर्शन अदृश्य को सिद्ध करता है और ठेकेदार अथवा व्यापारी मनमानी करता है। नास्तिक दण्ड का भय दिखाता है, व्यापारी दण्ड देनेवाले को रिश्वत दे बच जाता है। परिणामस्वरूप प्रत्येक प्रकार की दुर्व्यवस्था उत्पन्न हो रही है।

कर्मचारी को वेतन कम मिलता है। सरकार मालिक से छीनकर कर्मचारी को दिलवाती है। व्यापारी छीनने का आधार पूछता है तो कर्मचारी इसका आधार जीवन-निर्वाह बताता है। तीनों ही बातें न तो वैज्ञानिक और न ही दार्शनिक दृष्टि से उचित प्रतीत होती हैं। वैज्ञानिक दृष्टि है वेतन का सम्बन्ध काम से हो। दार्शनिक दृष्टि है कि जीने का अधिकार सबको है और सरकारी दृष्टि है शान्ति बनी रहे जिससे राज्य चलता रहे।

राज्य व्यवस्था को बनाये रखना चाहता है। दार्शनिक दृष्टि है कि न्याय हो और वैज्ञानिक दृष्टि है कि पेट भरने को मिले। अतः जीवन के प्रत्येक कार्य में विज्ञान, दर्शन और व्यवहार, जिसे हम मज़हब कहते हैं, में समन्वय नहीं रहा। कारण यह है कि यूरोपियन पूंजीवादी और कम्युनिस्ट, दोनों जीवन विधियों में विज्ञान, दर्शन और व्यवहार में समन्वय नहीं रहा।

यह तब तक नहीं हो सकता जब तक विज्ञान वैदिक न होगा। जब तक दर्शन विज्ञान के आधार पर न होगा और व्यवहार अर्थात् कर्मकाण्ड दार्शनिक आधार पर नहीं होगा।

इन तीनों की व्याख्या इस प्रकार है।

: ३ :

वेद विज्ञान (science) ही है। वर्तमान साइंस से इसका अन्तर यह है कि वेद में विज्ञान का निष्कर्ष दर्शन निकालते हैं। यूरोपीय विज्ञान निरीक्षण (observation) तो है, परन्तु इस निरीक्षण का परिणाम निकालनेवाला दर्शन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शास्त्र उनके पास नहीं है। एक विख्यात दार्शनिक कहता है—

Science is analytical description and philosophy is scientific interpretation (Will Durant : The story of philosophy. P. XXVIII.)

परन्तु यूरोप में यह समन्वय नहीं रहा।

वेद विज्ञान और वैदिक दर्शन में समन्वय है। इसी कारण वैदिक दर्शन शास्त्र मानता है 'जन्माद्यस्य यतः' और वेद कहता है 'घृतपृष्ठो' तथा 'विश्वपतिं'। इस संसार में पालन करनेवाला और अत्यन्त तेजोमय परमात्मा उपस्थित है। दर्शन कहता है 'शास्त्र योनित्वात्' और वेद कहता है 'ऋचो अक्षरे परमे व्योमन्यस्मिन्देवा।'

इसी प्रकार वेद की प्रत्येक बात दर्शनशास्त्र में सिद्ध की गयी है। प्रश्न यह है कि क्या वेद विज्ञान है? स्वामी दयानन्द के कथनानुसार वेद इस प्रकार है—

तत्रस्थैर्मन्त्रैरीश्वरमारभ्य भूमिपर्यन्तानां पदार्थानां गुणान् यथावद्विदित्वैते कार्येषूपकृतये मतिं जनयन्ति। ऋचन्ति स्तुवन्ति पदार्थानां गुणकर्मस्वभावाननया सा ऋक्, ऋक्, चासौ वेदश्चर्ग्वेदः।

अर्थात्—ऋग्वेद को प्रथम पढ़कर उन मन्त्रों से ईश्वर से लेकर भूमि पर्यन्त सब पदार्थों के यथावत् ज्ञान से संसार के उपकार के लिये प्रयत्न करे। ऋग्वेद शब्द का अर्थ इस प्रकार है कि जिससे सब पदार्थों के गुण और स्वभाव का वर्णन किया जाये वह 'ऋक्' और 'वेद' जो सत्य-सत्य ज्ञान का हेतु है, इन दो शब्दों से ऋग्वेद शब्द बनता है।

वर्तमान युग के वैज्ञानिक मानते हैं कि प्रत्यक्ष ही विज्ञान है। वैदिक दर्शन शास्त्र प्रत्यक्ष के साथ अनुमान को भी विज्ञान मानता है। इसी कारण वेद विज्ञान से अधिक गहराई तक गया है। वर्तमान विज्ञान अधूरा है।

वेद विज्ञान क्या बताता है? उसे संक्षेप में इस प्रकार बताया जा सकता है—

(१) एक मनुष्य, देखता है विश्व को और पृथिवी पर प्राणी को। मन्त्र में कहा है 'आपश्यं'। अर्थात् मैं देखता हूँ। अतः जो कुछ उस तथा पूर्ण सूक्त में कहा है, वह देखने (observation) का परिणाम है। इसी कारण हम इसे विज्ञान ही कहते हैं।

(२) मनुष्य प्राणी में देखता है प्रकृति, जीवात्मा और परमात्मा।

(३) मनुष्य जगत् में देखता है परमात्मा। जगत् एक चक्र के रूप में है और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परमात्मा इस जगत् चक्र को प्राणों की सहायता से चला रहा है।

(४) जगत् चक्र जिसे आजकल की भाषा में 'galaxy' अर्थात् आकाश गंगा कहा जाता है, सात महान् चक्रों से बनी है और इन सात चक्रों को सात सूर्य चलाते हैं।

(५) ध्यान देने योग्य बात यह है कि पूर्ण जगत् एक रथ चक्र की भाँति चल रहा है और उस महान् चक्र में सात अन्य चक्र हैं। ये सात सूर्यों से चलाये जा रहे हैं।

(६) व्योम का अन्त नहीं। यह असीम है और उसमें कई जगत् स्थित हैं।

(७) वेद कहता है कि प्राणी के शरीर में अशरीरी (जीवात्मा) कैसे आ गया और क्यों आ गया ? कहा गया है कि इस प्रश्न का उत्तर जानने के लिये किसी विद्वान् से जाकर पता करो। विद्वान् का अभिप्राय है जो सृष्टि-क्रम को जानता है। निराधार कल्पना से काम नहीं चलेगा।

(८) यह रहस्य कि शरीर में चेतन क्यों, कहाँ से और कैसे आ गया ? सामान्य वैज्ञानिक नहीं जानता। जो सृष्टि-क्रम को जानता है, वह ही बता सकता है कि जीवात्मा को शरीर में लानेवाला वही है जो इस जगत् में नक्षत्रों को थामे हुए है। अर्थात् जगत् रचना का वर्णन हो नहीं सकता जब तक किसी रचनेवाले के अस्तित्व को स्वीकार न करें। जगत् का रचनेवाला ही प्राणी में शरीर और शरीरी (जीवात्मा) को संयुक्त करने में सक्षम है।

(९) विद्वान् यह कहेगा कि जो मनुष्य यह जान लेता है कि यह जगत्-रचना और जगत् की स्थिति किसके कारण है, वही मनुष्य ज्ञान में स्थित हो सकता है। वही है जो प्राणी का जीवन स्थिर रख सकता है। वह सर्वव्यापक तत्त्व है। जगत् के एक-एक कण से उसका सम्पर्क है।

(१०) आदि में प्राणी-सृष्टि कैसे हुई ? अर्थात् प्राणी के प्रथम माता-पिता कौन थे ? वेद कहता है कि माता और पिता के बिना सन्तान नहीं होती। अतः आदि काल में भी माता और पिता थे। उन माता-पिता में भी सामान्य (usual) संयोग हुआ था। सूर्य से पुरुष बीज आया और पृथिवी के, माता के रूप में, गर्भ स्थित हुआ। संयोग से जो बना उसे वाणी मिल गयी। अर्थात् प्राणी-सृष्टि हुई।

(११) यह कहा है कि ध्रुव के दक्षिण में किसी सुरक्षित स्थान पर बीजा-रोपण हुआ और गर्भ स्थित हुआ। जब शरीर बन गया तो जीवात्मा इसमें स्थित हो गया और तीन प्रकार की सृष्टि-रचना हो गयी। स्वेदज, अण्डज और जेरज।

(१२) शरीर बनने में तीन अंश तो माता अर्थात् पृथिवी की ओर से आये। ये हैं पृथिवी, जल और वायु (पंच भौतिक) और पिता अर्थात् सूर्य की ओर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से तीन अंश जो आये, वे हैं प्राण, अग्नि और आकाश। इनमें दो—अग्नि और आकाश पंचभौतिक हैं और प्राण परमात्मा की शक्ति है।

(१३) जब जन्म हो जाता है तो वाणी प्रकट होती है। वाणी को ज्ञानवान समझते हैं, अज्ञानी नहीं समझते।

(१४) सृष्टि-प्रलय के अनादि, अनन्त प्रवाह की भाँति काल-प्रवाह भी अनादि और अनन्त है। अनादि अनन्त पदार्थ में कोई आरम्भिक बिन्दु (starting point) नहीं हो सकता। इसकी गणना तो किसी स्थान और अवस्था विशेष से ही आरम्भ कर सकते हैं। अतः इस पृथिवी पर पृथिवी की गति से ही काल गणना आरम्भ की जा सकती है। बारह महीने, दिन और रात्रि चक्र के लक्षण हैं। यह चक्र शिथिल नहीं हो रहा। सम्वत्सर वर्ष एक इकाई मानी जा सकती है। इसमें ३६० दिन और ३६० रातें, कुल ७२० दिन-रात होते हैं। सम्वत्सर में बारह महीने होते हैं।

काल गणना को एक दूसरे ढंग से भी वर्णन किया है। काल के पाँच पाद हैं जिनसे यह चलता है। अर्थात् काल की गणना होती है। यह है निमेष, काष्ठा, कला, मुहूर्त्त और दिन-रात। दिन-रात पर सप्ताह के दिन। वह सात हैं। संवत्सर में छः ऋतुएँ हैं।

(१५) जगत् में नक्षत्र-मण्डल, पाँच सहारों पर रचे गये हैं और चल रहे हैं। ये पाँच शक्तियाँ हैं। इनको पंच तन्मात्रा कहते हैं। इन शक्तियों के आश्रय सृष्टि-रचना होती है और जगत् का कार्य चलता है। ये प्राण के पाँच रूप हैं। प्रयोग होने पर भी क्षीण नहीं होते।

(१६) जगत् में सौर-मण्डल के विषय में लिखा है कि वह सूर्य के चारों ओर घूमता है और सूर्य इनको प्रकाशित करता है। इसमें बड़े-बड़े नक्षत्रों के अतिरिक्त रजस् अर्थात् छोटे-छोटे (asteriods) सहस्रों की संख्या में हैं।

(१७) जगत् में छः पदार्थ तो प्रकृति से उत्पन्न हुए हैं और सातवाँ पदार्थ परमात्मा से उत्पन्न हो रहा है। प्रकृति से उत्पन्न पदार्थ हैं महत् और पंच महाभूत। परमात्मा से जगत् में उपस्थित है प्राण। बस यही कुछ जगत् है। प्रकृति से उत्पन्न होनेवाले पदार्थ तो अन्य भी हैं, परन्तु उनके स्थिर रूप छः हैं। प्राण अन्य छः को चलाता है।

(१८) इस पृथिवी पर प्राणी-सृष्टि माता-पिता से होती है। उसके विषय में लिखा है कि सद्गुण युक्त स्त्रियाँ ज्ञानवान पुरुषों को वरें और अज्ञानियों को न वरें। इस प्रकार सन्तान उत्पन्न करें। वास्तव में परमात्मा उनका पिता होने से पितामह है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(१९) संसार में ऊँची-नीची अनेक योनियाँ हैं। कोई जीवात्मा नीचे की योनियों से ऊपर को उठते हैं और कुछ ऊपर से नीचे की योनियों में जाते हैं। यह पता नहीं चलता कि कौन जीवात्मा किस ओर से आया है। जीवात्मा की गति अप्रत्यक्ष है।

(२०) जैसे पृथिवी पर से देख रहे व्यक्ति को कोई नक्षत्र ऊपर से नीचे आ रहा दिखायी देता है, वास्तव में वह ऊपर जा रहा होता है। इसी प्रकार कोई नक्षत्र नीचे से ऊपर जा रहा दिखायी देता है और वास्तव में वह नीचे को आ रहा होता है। इसी प्रकार जो लोग संसार में लिप्त हैं, उन्हें उत्क्रमण कर रहे जीवात्मा निम्नक्रमण कर रहे दिखायी देते हैं और निम्नक्रमण कर रहे उत्क्रमण कर रहे दिखाई देते हैं। संसार में लिप्त होनेवालों की दृष्टि में दोष होता है।

(२१) जगत्रूपी वृक्ष पर जीवात्मा और परमात्मा दो चेतन तत्त्व ऐसे हैं जैसे कि वृक्ष पर दो पक्षी बैठे हों और एक उसके पके फलों का भोग कर रहा हो और दूसरा साक्षी मात्र हो।

जीवात्मा दो श्रेणियों में बाँटे गये हैं। एक ज्ञानवान् और दूसरे अज्ञानी। ज्ञानी तो मोक्ष के मार्ग को पाने के लिए कहता है और यत्न करता है और जो अज्ञानी है वह विषय-वासनाओं में लिप्त हो संसार के मीठे फल खाता है। यह अज्ञानी बार-बार ऊँची और नीची योनियों में जन्म लेता है।

(२२) ज्ञानी और अज्ञानी जीवात्मा में अन्तर बता दिया है। ज्ञानी वह है जो व्योम, अन्तरिक्ष और पृथिवी पर के पदार्थों का ज्ञान रखता है। भूमि से लेकर ईश्वर पर्यन्त पूर्ण ज्ञान का ज्ञाता मोक्ष का भागी बन सकता है।

(२३) ज्ञान परमात्मा से दिया जाता है। पहले व्योम और अन्तरिक्ष के देवताओं को और वहाँ से वाणी के रूप में ऋषियों के हृदयों में आता है। तदनन्तर ऋषि इनको मानवी वाणी में सामान्य जन के लिये कहते हैं।

(२४) गहन, गम्भीर, सलिल, समुद्र में अर्थात् अपार अन्धकारमय प्रकृति के समुद्र में जगत् (galaxy) को और उस जगत् में सौर-मण्डल को परमात्मा ही थामे हुए है। इस थामने में परमात्मा की तीन शक्तियाँ, जिन्हें मन्त्र में समिधा कहा है, कार्य कर रही हैं। प्राण जो तन्मात्राओं के रूप में कार्य करता है, उसके साथ अग्नि और वायु कार्य करती है। इन तीन शक्तियों द्वारा ही सृष्टि रचना और सृष्टि का पालन हो रहा है।

(२५) उक्त शक्तियों द्वारा ही वेद वाणी कहती है और वह वेदवाणी जन-जन का पालन-पोषण करती है। मनुष्य इससे ज्ञानवान् होते हैं और सौभाग्यवान् होते हैं। यह अव्यक्त रूप में ऋषियों के मस्तिष्क में पहुँचती है और वे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसे मनुष्यों को उच्चारण करके देते हैं।

(२६) प्राणी की सृष्टि के विषय में वेद बताता है कि आदिकाल में भी रचना-क्रम वही था जो पीछे के काल में हुआ है। अर्थात् माता-पिता के संयोग से ही प्राणी की रचना होती है। आदि में सूर्य ने पिता का कार्य किया और पृथिवी ने माता का। शरीर तो माता-पिता बनाते हैं, परन्तु प्राणी में चेतन-तत्त्व का आकर स्थित होना ईश्वर की प्रेरणा से ही होता है।

(२७) शरीर बनने लगता है तो जीवात्मा परमात्मा की शक्ति से द्रुत गति से चलाया जाता हुआ उसमें आ जाता है। उसका गर्भ के भीतर और बाहर दोनों स्थानों पर पालन परमात्मा से ही होता है।

(२८) चार प्रश्न किये गये हैं। पहला, भूमि कितनी दूर तक है और कब तक है? उत्तर है कि जहाँ तक वेदी है। और जब तक भूमि सन्तानोत्पत्ति और पालन में सहायक होती है। जब ये कार्य बन्द हो जायेंगे तब भूमि का अन्त होगा। पृथिवी हो अथवा स्त्री हो, वह (वेदी) यज्ञरूप कार्य करेगी तो भूमि कहलायेगी।

दूसरा प्रश्न है कि लोक का आश्रय स्थान क्या है? अभिप्राय यह कि सन्तान चक्र किसके आश्रय चलता है। उत्तर है जब तक यज्ञ रूप में सन्तान-उत्पत्ति होती रहेगी।

तीसरा प्रश्न है कि सन्तानोत्पत्ति के लिये रेतस् (बीज) कहाँ से आता है? उत्तर है सूर्य से।

चौथा प्रश्न है कि वेदवाणी जो आकाश में स्थित है, वह कहाँ से आती है? उत्तर है परमात्मा से।

(२९) यह कहा है कि अर्ध गर्भावस्था में ही नये उत्पन्न होनेवाले में सात प्राण आकर काम करने लगते हैं। जगत् के विषय में हिरण्यगर्भ और प्राणी के विषय में माँ के आधे गर्भ में प्राण आकर कार्य करने लगते हैं। इस पर भी जीवात्मा गर्भावस्था में नहीं जानता कि वह कहाँ से आया है और क्यों आया है? यह वेद ज्ञान प्राप्त होने पर ही पता चलता है।

(३०) अविनाशी जीवात्मा का नाशवान् शरीर के साथ संयोग इस कारण ही होता है जिससे जीवात्मा को उत्क्रमण करने का अवसर मिले।

(३१) वेद में प्रतिपादित विषय अविनाशी और अद्वितीय है। जो इस विषय का भावार्थ नहीं जानता, वह वेद उच्चारण करे अथवा सुने, उसे कुछ लाभ नहीं होता। जो इसके विषय को जानता है, वह मोक्ष पद को पाता है। यह वाणी ऐश्वर्य देने वाली है। जैसे गाय घास खाकर दूध देती है वैसे ही वेद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाणी ज्ञानामृत प्रदान करती है। गाय की भाँति यह भी अघ्न्या है। यह वेद-वाणी मिमाती है। इसमें तरलता [लचक] है। यह काटी-छाँटी जाती है। एक वाक्य, दो वाक्यों, चार वाक्यों और आठ वाक्यों में कही जा सकती है। इस वेदवाणी में असंख्य ही अक्षर हैं।

(३२) इस सूक्त में अभी तक जिन दिव्य पदार्थों का वर्णन किया गया है, वे हैं—परमात्मा, जीवात्मा, प्रकृति, प्राण, अग्नि, वायु, व्योम, जगत्, सौर-मण्डल, नक्षत्र, सूर्य, पृथिवी, प्राणी, प्राणी का जन्म और वेदवाणी।

(३३) उक्त दिव्य गुणयुक्त पदार्थों के अतिरिक्त इसी सूक्त में वर्णन है हिरण्यगर्भ, सूर्य, पर्जन्य, वाणी तथा सरस्वती का।

(३४) इन सब पदार्थों में मूल पदार्थ तीन हैं— परमात्मा, जीवात्मा और प्रकृति। प्रकृति से ही अनेकानेक पदार्थ बने हैं और बनाने वाला है परमात्मा। ये बने हैं जीवात्मा के प्रयोग के लिए। जीवात्मा इनका सदुपयोग कर मोक्ष प्राप्त करता है और दुरुपयोग कर जन्म-मरण के चक्र में फँस जाता है।

: ४ :

जहाँ तक वैदिक दर्शन शास्त्रों का सम्बन्ध है, वेदों के प्रत्येक कथन को दर्शनशास्त्र ज्यों का त्यों युक्ति से सिद्ध करते हैं।*

भारत में दुर्घटना यह हुई कि कुछ मतावलम्बी अपने मत को सिद्ध करने के लिए दो मार्गों का अवलम्बन करने लगे प्रतीत होते हैं। एक ब्रह्मसूत्रों को उपनिषद् ग्रन्थों से जोड़ रहा है और दूसरा वेदों को कर्मकाण्ड के ग्रन्थ मानने लगा है। दोनों कार्य वेद-ज्ञान को निकृष्ट सिद्ध करने में योगदान देते हैं।

विशुद्ध विज्ञान के सम्बन्ध में यह कहा जा सकता है कि वेद-ज्ञान अधिक गहराई तक पहुँचा हुआ है। जगत् के मूल कारणों के विषय में वर्तमान विज्ञान लगभग अनभिज्ञ ही है। इसमें कारण हमने बताया है। विज्ञान और दर्शनशास्त्र में समन्वय नहीं हो रहा।

जहाँ तक वर्तमान विज्ञान का सम्बन्ध है, यह केवल मूल प्रकृति के विषय में इतना जानता है कि—

'मैटर' में तीन प्रकार के कण (particles) पाये जाते हैं। एक इलैक्ट्रोन (electron) जिस पर (-) आवेश (charge) होता है। दूसरा प्रोटोन (proton) जिस पर (+) आवेश (charge) होता है और तीसरा न्यूट्रोन

* इस विषय पर विस्तृत विवेचना के लिये लेखक का 'ब्रह्मसूत्र' पर भाष्य पढ़ें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(neutron) जिस पर (०) आवेश होता है।

यह माना है कि इनके विपरीत "पार्टिकल" भी होते हैं अर्थात् इलैक्ट्रोन (+) आवेश वाले, प्रोटोन (—) आवेश वाले कण भी होते हैं और कहा है है कि जब ये विपरीत कण परस्पर मिलते हैं तो ये एक दूसरे को विनष्ट कर देते हैं और पहले मीज़ोन इत्यादि अटिकाऊ (unstable) कण बनते हैं। और एक क्षण के अंश में ही वे टिकाऊ (stable) कण बन जाते हैं।

वर्तमान युग के वैज्ञानिकों को पता चल गया है कि मूल प्रकृति भी है। उसके टिकाऊ और द्रव्यमान (mass) हीन कण होते हैं। परन्तु वे बता नहीं सकते कि उस द्रव्यमान हीन पदार्थ से ही गतिशील जगत् कैसे बना ? इसको जिस कुशलता से वैदिक ज्ञान ने जाना है, वर्तमान विज्ञान नहीं जान सका।*

जहाँ जीवात्मा और परमात्मा का सम्बन्ध है, वर्तमान विज्ञान शून्य है। यह यत्न कर रहा है कि प्रकृति के भीतर से ही चेतना को प्रकट करे, परन्तु वह सफल नहीं हो रहा।

वर्तमान युग के दार्शनिक चेतन तत्त्व की अनश्वरता (immortality) के विषय में निम्न उद्धरण से एक धुँधला-सा चित्र दिखाई देगा। यह हम "ऐन्साइकलो-पीडिया आफ़ ब्रिटेनिका" में से उद्धृत कर रहे हैं।

संसार में एक अनश्वर तत्त्व भी है। यह आस्तिकता (theism) है और जड़ प्रकृति में से ही सब कुछ वर्णन किया जा सकता है (Universe is self explanatory) नास्तिकवाद तथा अनीश्वरवाद है।

'ऐन्साइक्लो-पीडिया" में लेखक लिखता है कि भारत के दर्शनों के आधार उपनिषद् में, मुख्यरूप में यह चर्चा है कि मनुष्य क्या है और इसका अन्तिम ध्येय क्या है ? अफलातून (Plato) के विचारों में मुख्य समस्या है अनश्वरता की। उनमें यह पाया जाता है कि सत् अर्थात् मूल में आत्म तत्त्व है। उसने यह सिद्ध करने का यत्न किया है कि आत्मा का हनन नहीं किया जा सकता। अरस्तू (Aristotle) ने यह विचार व्यक्त किया है कि ज्ञान (reason) अनादि है, परन्तु वह व्यक्तिगत अनश्वरता स्वीकार नहीं करता; क्योंकि आत्मा बिना शरीर के टिक नहीं सकता। भोगवादी (Epicureans) जड़वादी सिद्धान्त से कहते हैं कि मृत्यु के उपरान्त चेतना नहीं रहती। अतः मृत्यु से डरना नहीं चाहिए। उदासीन (Stoics) कहते हैं कि सामूहिक ज्ञान ही स्थायी है। व्यक्तिगत अस्तित्व तो नियत काल के लिए ही होता है। यह मारकस औरिलियस

* देखें लेखक की रचना "विज्ञान और विज्ञान" पृष्ठ ११०-१११।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(Marcus Aurelius) ने कहा है। सिसरो (Cicero) व्यक्तिगत अनश्वरता स्वीकार करता है। ऑगस्टाइन (Augustine) नवीन प्लूटोवाद का अनुसरण करता हुआ कहता है कि मनुष्य का आत्म सार रूप में अनादि है। मुसलमान दार्शनिक ऐवाचन (Avachnna) आत्मा के अनादित्व की घोषणा करता है, परन्तु उसी के सहमतवादी ऐवरोज (Averroes) अरस्तु के समीप रहता हुआ केवल ज्ञान (reason) को अनादि मानता है। ऐलबर्टस मैगनस (Albertus Magnus) व्यक्तिगत आत्मा की अनश्वरता को यह कहता हुआ स्वीकार करता है कि आत्मा ही सबका कारण है। जुहन्ना स्कोट्स इरिगिना (Johannes Scotus Aeregena) कहता है कि व्यक्तिगत आत्मा की अनश्वरता न तो सिद्ध की जा सकती है और न ही असिद्ध की जा सकती है। स्पिनोज़ा (Spinoza) कहता है कि परमात्मा अन्तिम सत्य है और मानता है अपनी अनश्वरता, परन्तु व्यक्ति की व्यक्तिगत अनश्वरता नहीं मानता। लिबनिज़ (Libniz) कहता है कि अस्तित्व है व्यक्तियों (monoads) के आत्म तत्वों का समूह। मनुष्य एक monad व्यक्ति है। यह स्वयं स्थिर नहीं रह सकता। इसे परमात्मा बनाता है।..... कान्ट Kant स्वीकार करता है कि आत्मा क्षरित हो विनष्ट नहीं होता, परन्तु सुझाव देता है कि इसका अन्त हो सकता है शक्तिहीन होने से। अनश्वरता युक्ति से सिद्ध नहीं की जा सकती, परन्तु नैतिकता के लिए आधार तत्त्व माना जा सकता है। नैतिकता (holiness) इच्छा की नैतिकता के नियमों से अनुकूलता निरन्तर प्रगति की माँग करती है। यह तब ही सम्भव हो सकता है जब मानें कि एक व्यक्तित्व अनन्त काल तक चलनेवाला है। इसे ही आत्मा की अनश्वरता कहा जाता है। ...हेगल (Hegel) के दर्शन का अर्थ कुछ लोग ऐसा लगाते हैं कि व्यक्तित्व सीमित है और समाप्त होने वाला है। कुछ इसका अर्थ यह भी लगाते हैं कि व्यक्तित्व परम तत्त्व के अंश के रूप में रहता है। शॉपनहार (Schopenhauer) कल्पना करता है कि संसार के कष्टों से मुक्ति एक चेतन से हटकर अचेतन व्यापक अस्तित्व में मिल जाना है।

इसी लेख में लेखक लिखता है—

After 1925 there was little philosophical discusson of the problem. There was a widespread impression that no conclusion could be reached concerning it and its consideration might be avoided. W. E. Hoking challenged this attitude as an idleness of mind. Ency. Britt. Ed. 1967. Vol. II page 1106, c

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थात्--सन् १९२५ के उपरान्त इस समस्या पर दार्शनिक चर्चा नहीं हो रही। यह कहा है कि इस पर चर्चा का कुछ परिणाम नहीं निकल रहा और इसे छोड़ दिया जाए। परन्तु डब्ल्यू० ई० होकिंग (W. E. Hoking) इसका विरोध करता है कि यह मन की अकर्मण्यता है।

इस दिये गये संक्षिप्त विवरण से यह पता चलता है कि अधिकांश यूरोपियन, प्राचीन और नवीन दार्शनिक एक अनादि आत्मतत्त्व के होने को स्वीकार करते हैं, परन्तु भिन्न-भिन्न रूपों में। इस पर भी वैज्ञानिक इस विषय में रुचि नहीं रखते। यह इस कारण है कि पाश्चात्य दर्शन और विज्ञान में सम्बन्ध विच्छेद है।

यूरोपियन वैज्ञानिक भी दर्शन शास्त्र को मानसिक व्यायाम मात्र मानते हैं और वे अपने निरीक्षणों (observations) को फ़िलॉसॉफ़ी से जोड़ नहीं पाते।

वास्तव में दर्शन शास्त्र और विज्ञान का चोली-दामन का सम्बन्ध है। विज्ञान प्रत्यक्ष और अनुमान पर आधारित हो तो सत्य के दर्शन हो सकते हैं। शर्त यह है कि अनुमान प्रतिष्ठित अर्थात् आधारयुक्त होना चाहिए।

अनुमान के विषय में यह कहा जाता है कि जब हम प्रत्यक्ष में किन्हीं दो वस्तुओं अथवा घटनाओं को व्यापक रूप में सम्बन्धित देखते हैं तो एक को देखकर दूसरे का ज्ञान हो सकता है और वह ज्ञान सत्य होगा। यही अनुमान है और इसे ही दर्शन (philosophy) कहते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शुद्धि-पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२९	१२	अथित्	अर्थात्
३२	१७	चकुस्तसराणि	चक्रुस्तसराणि
३४	१५	भक्ति	भांति
३५	१९	निर्माण	ज्ञानवान
३७	२०	तोलक	लोलक
५३	१	विर्मति	बिर्मति
६५	१५	अथमे	अथेमे
६९	२५	स्थात्र	स्थात्रे
८४	१२	व्राकं	वाकं
९१	२	चितिर्मिनि	चितिर्मिनि
	२८	चितिमिः	चितिभिः
९२	१७	स्वघामिः	स्वधामिः
	२९	स्वधामिः	स्वधाभिः
१०१	५	पूरक	परक
१०३	२६	यस्तत्र	यस्तन्न
१०८	३०	जल	आपः
११२	१५	Nebuls	Nebula
११७	२	प्रघयः	प्रधयः
	३	शङ्क्वो	शङ्कवो
	६	Circumberence	Circumference
	१९	१६५	१६४
	२१	प्रघयः	प्रधयः
१२०	८	अथवा	तथा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषयानुक्रमणिका

अग्नि सूर्य और वायु १११-११२
अध्यात्म ५४-५५
आकाश गंगा १४-१६
कार्य जगत् (तीन पदार्थ रूपवान प्रकृति, प्राणी का जीवात्मा और परमात्मा) ४८
काल गणना ६५-६६
कास्मोगॉनी ४२
क्रियाशील शक्ति २४
गर्भित शक्ति २४
गायत्र-अर्थ ८२
गैलेक्सी १४
छन्दों का देवों में वितरण ३४-३५
जगत् : विवेचना १३-१५
जगत् : तीन तत्त्व ७८
जगत् : तीन मूल पदार्थ ४५,४६
जगत् : थामने वाली शक्तियाँ ८७
जगत् : पाँच आश्रम ६७-६८
जगत् चक्र ५१-५३
जगत् चक्र : कौन चलाता है ? ५६,५७
जगत् चक्र: तीन नाभियाँ ५०
जगति ८२
जीवात्मा : अन्य योनियों में ९४
जीवात्मा : अपने विषय में ज्ञान १०२
जीवात्मा : अज्ञानी ८१-८२
जीवात्मा : आधे से भी लौटना ७४
जीवात्मा : उत्क्रमण तथा निष्क्रमण ७५-७६
जीवात्मा : ऊपर के लोकों से ७४
जीवात्मा : नीचे की दूसरी योनियाँ ७३
जीवात्मा : परमात्मा ९२-९३, ९५-९६
जीवात्मा : परमात्मा से अन्तर ७९
जीवात्मा : योनियों में भ्रमण ७५
जीवात्मा : शरीर से उत्क्रमण-निष्क्रमण १०२-१०३
जीवात्मा : ज्ञानवान ८०-८१
न्यूट्रिनोस ४३
पदार्थ की विवेचना ४५
परमाणु सरल से जटिल परमात्मा की शक्ति से ९७
परमाणुओं के गुणों पर ऊर्जा का प्रभाव ३३
परमात्मा : अजन्मा ९४
परमात्मा का अस्तित्व ४१, ५७-५८
परमात्मा का ज्ञान जगत् से ५८
परमात्मा, जीवात्मा, प्रकृति : परस्पर सम्बन्ध ७८
पूर्व जन्म का ज्ञान किनको ? ७४
पृथिवी : अन्त ९७-९८
पृथिवी और सूर्य : माता-पिता ९६
ब्रह्म दिन-रात्रि ३८
भाववृत्तम् २२
भुवन का आश्रय ९७-९८
प्रकाश वर्ष १५
प्रथम मनुष्य का आविर्भाव ५२-५३
प्रकृति का स्वरूप (सांख्य में) २८
प्रकृति, जीव और परमात्मा : श्वेताश्वतर उपनिषद में ७९

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राण : जगत् के कार्य के लिए ४९-५०
प्राण : परमात्मा की सन्तान ४८-४९
प्रकृति के मूल पदार्थ २२
प्राण प्रकृति विवेचना ७० पंक्ति १ से २४ तक
प्राण प्राणी में ५०
प्राणी : तीन तत्त्व ४६-४७
प्राणी : परमात्मा जीवात्मा और शरीर ४७-४८
प्राणी : जीवात्मा ७९
प्राणी : जीवात्मा और वाणी ६४
प्राणी : पृथिवी और सूर्य से ९७
प्राणी से प्राणी की रचना ७२
प्राणी सृष्टि : माता पृथिवी पिता सूर्य ६०-६२
मनुष्य और पशु में अन्तर १५-१६
मनुष्य योनि जन्म समूह में नहीं ७३
मनुष्य-रचना का पृथ्वी पर स्थान ६२
मन्त्र देवता (अभिप्राय) ११-१४
मानव सृष्टि का आरम्भ १५
मिमत मन्त्र ८६
मिमत वाणी से मानवी भाषा ८५-८६
'मिमते' ८५
मूल प्रकृति का स्वरूप ८६-८७
रचना प्रलय ३७
रेतस् कहाँ से आता है ? ९७
वाणी और आपः का सम्बन्ध १०८
वाणी के चार रूप ११२-११४
वायु, अग्नि और सूर्य १११-११२
विश्व के देवता १०७
वेद वाणी ८८-८९
वेदवाणी अघ्न्या है ८८-८९
वेदवाणी अव्यक्त है ९१
वेद वाणी कहाँ से आती है ? ९७
वेद वाणी अव्यक्त से व्यक्त ९१
वेद वाणी का आविर्भाव १६-१८
वेद वाणी का स्वरूप १०६
वेद वाणी गाय से दूध की भाँति ८८
वेद वाणी गौ दूध समान ज्ञान देती है ९०
वेद वाणी तीन शक्तियों से ८७
वेद वाणी मन तक पहुँचती है ९१
वेद वाणी मारने योग्य नहीं १०५
वेद वाणी सामान्य बाणी का स्रोत ९०
वेद वाणी संस्कृत तथा लिपि १०५
वेद वाणी हिरण्यगर्भ से पृथ्वी पर १०८-१०९
वेद वाणी हिरण्यगर्भ से मनुष्य मन तक ९१-९२
वेदों का आविर्भाव ३६
वेदों का आविर्भाव देवताओं से मनुष्यों तक ३६
वेदों का आविर्भाव ऋषियों ने सुना और मानवी भाषा में कहा ३७
विश्वे देवाः (लक्षण) ११
व्योम २१
सद्गुणयुक्त स्त्रियाँ गुणवान पुरुषों को वरें ७२
सन्तान में माता के तथा पिता के अंश ६३-६४
सम्वत्सर का आत्मा काल ११७
सम्वत्सर चक्र ६५
सरस्वती कला ११८
सरस्वान—सूर्य की रस उत्पन्न करने वाली किरणें १२१-१२२
सलिल २५-२६
सामर्थ्य का स्रोत १००-१०१
सिद्धि के उपाय ११९-१२०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूर्य, अग्नि, वायु १११-११२
सूर्य के अन्य नाम ११४-११६
सूर्य पर्जन्य अग्नि का सम्बन्ध १२०-१२१
सौर जगत् में क्या है ? ६८-६९
सौर वर्ष तथा देव वर्ष ३२
सृष्टि अंग सांख्यानुसार ७१-७२
सृष्टि के रचनेवाला २९
सृष्टि रचना काल ३१-३२
सृष्टि रचना के पूर्व २३-२४
सृष्टि रचना प्राण और स्वधा का संयोग ४४
सृष्टि रचना में ऊर्जा २८
सृष्टि रचना में यत्न २६-२७
सृष्टि रचना सांख्य में ३८-४१
सृष्टि रचना से पूर्व २२
सृष्टि रचना से पूर्व तम २४-२५
सृष्टि रचयिता परमात्मा ३०
स्वधा २४
स्त्रियों को पति वरने का अधिकार ७२
हिरण्यगर्भ और सोम ११०-१११
हिरण्यगर्भ का स्वरूप ११०
त्रिष्टुप के अर्थ ८२
ज्ञान का स्रोत वेद १०३-१०४
ज्ञानवान के लक्षण ८२-८३

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रमाणानामनुक्रमणिका

अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य···
(ऋ० १-१-१) २७-४६
अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां
(श्वेता० ४-५) ७७-११०
अविद्यामाहुरव्यक्तं···
(महाभारत शान्ति० ३०७-२) ८३
अहर्वा अश्वं पुरस्तान्···
(बृहदा० १-१-२) ८७
अक्षरं ब्रह्म परमं स्वभावो
(भ० गी० ८-३) ५४
अक्षरमम्बरान्तधृतेः ।।
(ब्र० सू० १-३-१०) ३०-९५
आशीदिदं तमोभूतम्
(मनु० १-५) २६
इतरपरामर्शात् स इति
(ब्र० सू० १-३-१८) ६१
इममेवाग्निं महान्तं (च)
(निरुक्त ७-१८) ११५
ईक्षतेर्नाशब्दम् ।।
(ब्र० सू० १-१-४) ४१
उद्गीतमेतत्परम् (श्वे० १-७) ५५
उद्यानं ते पुरुष (अथर्व ८-१-६) १०३
ऊर्ध्वो भव प्रति (यजु० १३-१३) १०४
एको हि रुद्रो न (श्वे० ३-२) ५७
ऋषिभिर्बहुधा गीतं (भ० गी० १३-४) ४७
कर्णिका तस्य पद्मस्य (महा भा० शान्ति० १८२-३८) ६३
कामक्रोधवियुक्तानां यतीनां (भ० गी० ५-२६) ७५
कुतस्तु खलु सोम्यैव ् (छान्दो० ६-२-२) २२
जन्माद्यस्य यतः ।।(ब्र० सू० १-१-१) ४१
तद्व्रितांस्तदभिप्रायान् (बृहद्देवता १-३) ११
तत्तु समन्वयात् ।। (ब्र० सू० १-१-३) ४१
ततो दिनकरैर्दीप्तैः (महा० भा० वन० १८८-६७) ५१
तदाहुः किं तदसदासीदित्यृषयो (शत० ६-१-११) ७०
तस्मिन्नण्डे स भगवानु (मनु० १-१२) ३१
देवीं वाचमजनयन्त (ऋ० ८-१००-११) ११
धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं (मनु० ६-९२) ११९
नमः सर्वस्मै त इदं नमः ।। (अथर्व ११-४-८) ४९
न साम्परायः प्रतिभाति (कठ० १-२-६) ८१
नातिचिरेण विशेषात् ।। (ब्र० सू० ३-१-२३) ९३
पराचः कामाननुयन्ति (कठ० २-१-२) ८१
प्राणाय नमो यस्य (अथर्व० ११-४-१) ४९
बहिरन्तश्च भूतानामचरं (भ० गी० १३-१५) ३०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बृहस्पते प्रथमं वाचो (ऋ० १०-७१-१) १८
भिद्यते हृदयग्रंथिछिद्यन्ते (मुण्डको० २-२-८) ८०
मन्त्रदृग्भ्यो नमस्कृत्वा (बृहद्देवता १-१) ११
मानसस्येह या (महा भा० शान्ति० १८२-३७) ६२
यज्ञशिष्टामृतभुजो यान्ति (भ० गी० ४-३१) ११९
बद्वाग्वदन्त्यविचेतनानि (ऋ० ८-१००-१०) १६
लघ्वादिधनर्मे साधर्म्यं (सांख्य १-१२८) ३८
वायुर्वै गौतम तत् सूत्रं (बृ० उ० ३-७-२) ५०
विद्यां चाविद्यां च (यजु० ४०-१४) ८३
वेदितव्यं दैवतं हि (बृहद्देवता (१-२) ११
व्यतिरेकानवस्थितेश्च (ब्र० सू० २-२-४) ७९
शास्त्र योनित्वात् ॥ (ब्र० सू० १-१-२) ४१, १००
सत्वरजस्तमां साम्यावस्था (सां० १-६१) ४३, ७१
सर्वत्र प्रसिद्धोपदेशात् ॥ (ब्र० सू० १-२-१) ४५
सर्वाजीवे सर्वसंस्थे (श्वे० १-६) ४८
सर्वेषां तु स नामानि (मनु० १-२१) ९०
स होवाच वायुर्वे गौतम (बृहदा० ३-७-२) १११
सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा (भ० गी० ३-१०) २७, ४७
सुकृतदुष्कृतं एवेति तु बादरिः ॥ (ब्र० सू० ३-१-११) १०३
सोऽपोऽसृजत। वाच एव (श० ब्रा० ६-१-१-९) १०८
सोऽयं पुरुषः प्रजापतिः (श० ब्रा० ६-१-१-८) १७
संयुक्तमेत्तत्क्षरमक्षरं च (श्वे० १-८) ५५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनीषी साहित्यकार श्री गुरुदत्त की
हिन्दी जगत् को अनुपम देन

हमारी सांस्कृतिक धरोहर

श्री गुरुदत्त जी की रचनाएँ ज्ञान का अथाह भण्डार हैं। वेद, उपनिषद्, दर्शन शास्त्र, इतिहास, पुराण इत्यादि सभी विषयों पर उनकी खोज तथा उनका युक्तियुक्त, प्रमाण सहित विश्लेषण उनकी रचनाओं में हमें मिलता है। इन रचनाओं में वर्णित ज्ञान का सार इस एक ही खण्ड में प्रस्तुत किया गया है।

इस रचना के आधार ग्रन्थ हैं—

वेद और वैदिक काल, वेद प्रवेशिका, सायंस और वेद, इतिहास में भारतीय परंपराएँ, भारतवर्ष का संक्षिप्त इतिहास, धर्म तथा समाजवाद, श्रीमद्भगवद्गीता : एक अध्ययन।

भारतीय संस्कृति के विभिन्न पहलुओं का परिचय प्राप्त करने का अनुपम ग्रन्थ—आकर्षक रूप-रेखा, बढ़िया कागज़ पर सुन्दर छपाई, डिमाई आकार में पृष्ठ २५६, मूल्य १५० रुपये

हिन्दी साहित्य सदन

३०-पी, कनाट सरकस (मद्रास होटल के नीचे) नई दिल्ली-११०००१
फोन : ३४३५५७

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

081
167983

सुप्रसिद्ध विद्वान् एवं विचारक
श्री गुरुदत्त की अनुपम रचना

श्रीमद्भगवद्गीता

सुरल सुबोध भाषा भाष्य

मूल्य : नब्बे रुपये मात्र

जिस जाति को धरोहर में गीता का ज्ञान मिला हो, उस जाति के घटक आज मरने से भयभीत हों तो यह आश्चर्य की बात है। इसका मुख्य कारण यह है कि हम गीता को ऐसा ज्ञान मानते हैं जिसकी आवश्यकता वृद्धावस्था में मृत्यु के किनारे बैठे हुए पड़ती है।

वास्तव में गीता-ज्ञान मनुष्य को कर्म-क्षेत्र में उतरने के समय मिलना चाहिए। गीता मुख्यतया कर्मयोग का ज्ञान है।

भगवद्गीता के ज्ञान की शुद्ध विवेचना में लिखा यह भाष्य अनुपम है।

Central Library
167983
Gurukula Kangri (Deemed to be University) Haridwar

हिन्दी साहित्य सदन
३०-पी, कनाट सरकस, (मद्रास होटल के नीचे)
नई दिल्ली-११०००१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तकालय

गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

R 089.9143

वर्ग संख्या.....GU.R-V आगत संख्या.....167983

पुस्तक विवरण की तिथि नीचे अंकित है। इस तिथि सहित 30 वें दिन यह पुस्तक पुस्तकालय में वापस आ जानी चाहिए। अन्यथा 50 पैसे प्रतिदिन के हिसाब से विलम्ब दण्ड लगेगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

GURUKUL KANGRI LIBRARY

	Signature	Date
Access No.		
Class No		
Cat No.		
Tag etc.		
E.A.R.		
Recommn. by		
Data Ent. by		
Checked		

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री गुरुदत्त

1894-1989 शिक्षा : एम. एस-सी.

प्रथम उपन्यास ''स्वाधीनता के पथ पर'' से ही ख्याति की सीढ़ियों पर जो चढ़ने लगे कि फिर रुके नहीं।

विज्ञान की पृष्ठभूमि पर वेद, उपनिषद् दर्शन इत्यादि शास्त्रों का अध्ययन आरम्भ किया तो उनको ज्ञान का अथाह सागर देख उसी में रम गये।

वेद, उपनिषद् तथा दर्शन शास्त्रों की विवेचना एवं अध्ययन अत्यन्त सरल भाषा में प्रस्तुत करना गुरुदत्त की ही विशेषता है।

उपन्यासों में भी शास्त्रों का निचोड़ तो मिलता ही है, रोचकता के विषय में इतना कहना ही पर्याप्त है कि उनका कोई भी उपन्यास पढ़ना आरम्भ करने पर समाप्त किये बिना छोड़ा नहीं जा सकता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar